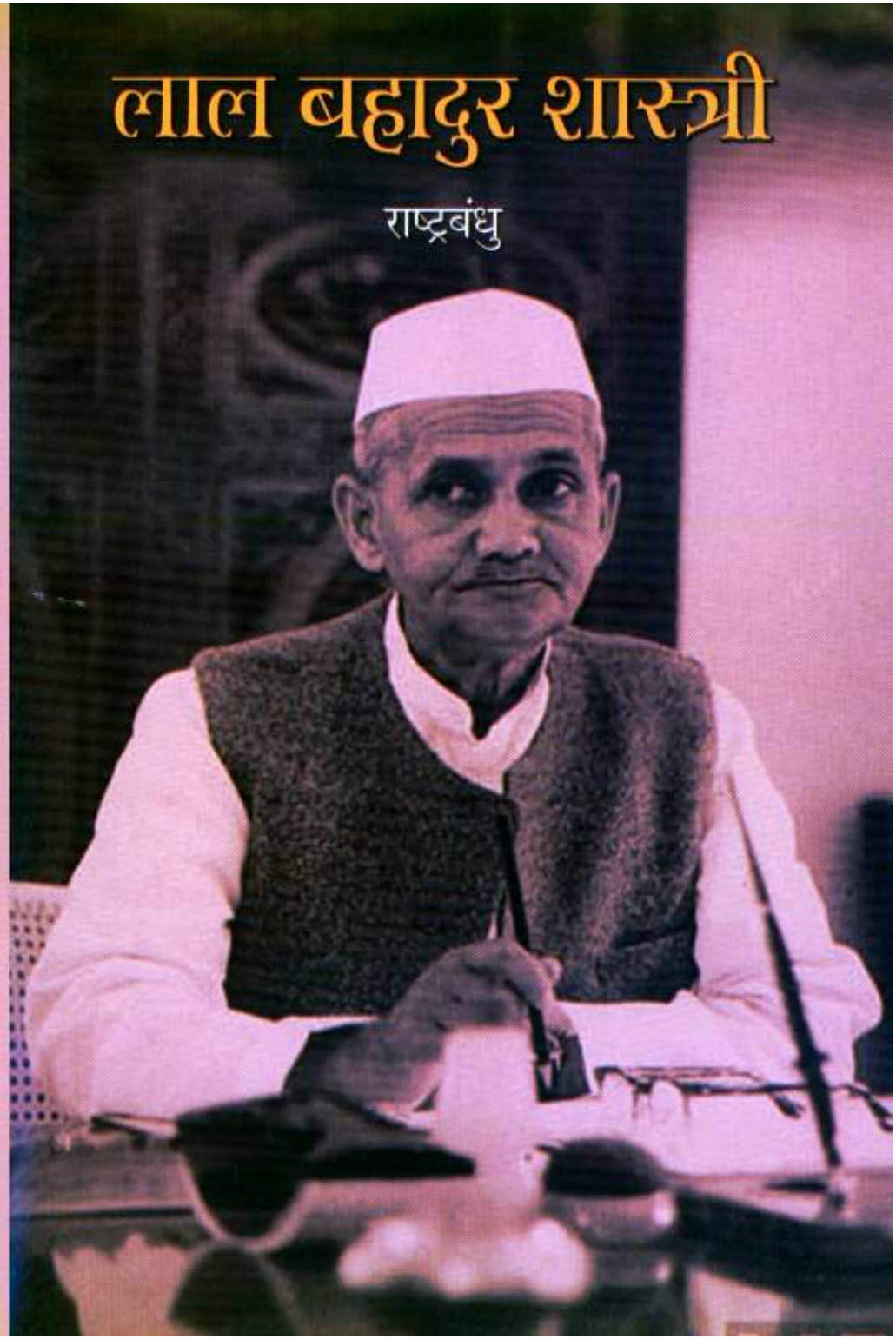

लाल बहादुर शास्त्री

राष्ट्रबंधु

NBT INDIA
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

₹ 30.00
ISBN 812376659-9
9788123766591
12131457

लाल बहादुर शास्त्री

राष्ट्रबंधु

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

जय जवान जय किसान

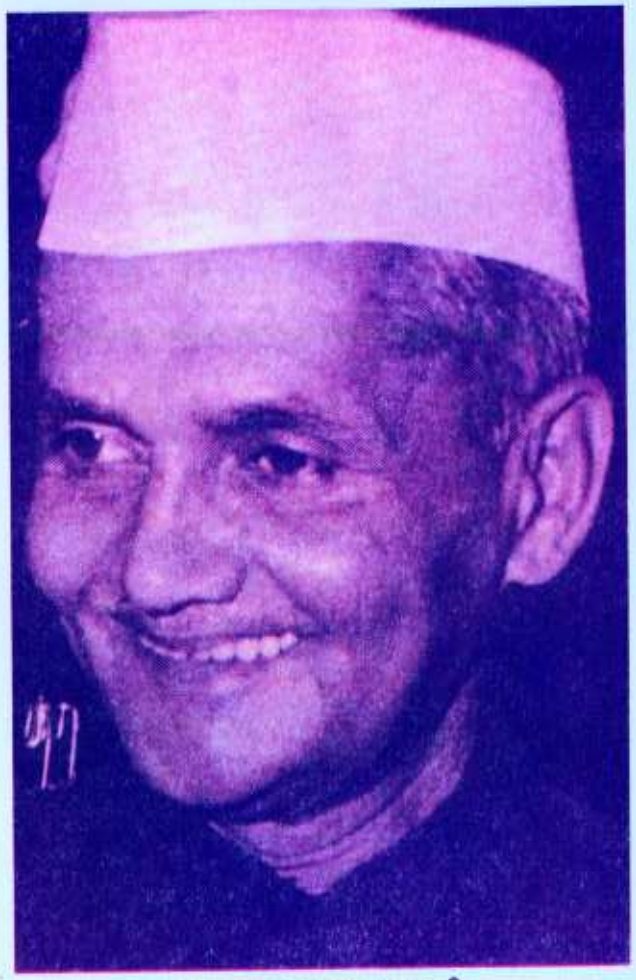

लाल बहादुर शास्त्री

जन्म : 2 अक्तूबर, 1904

निधन : 11 जनवरी, 1966

ISBN 978-81-237-6659-1

पहला संस्करण : 2012 *(शक 1934)*

मूल © राष्ट्रबंधु

Original : Lal Bahadur Shastri *(Hindi)*

₹ 30.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नेहरू भवन, 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II,

वसंत कुंज, नई दिल्ली–110 070 द्वारा प्रकाशित

"हम रहें या न रहें लेकिन यह झंडा रहना चाहिए और देश रहना चाहिए। और मुझे विश्वास है कि यह झंडा रहेगा, हम और आप रहें न रहें, लेकिन भारत का सिर ऊँचा होगा; भारत दुनिया के देशों में एक बड़ा देश होगा और शायद यह दुनिया को बहुत कुछ दे भी सके। अब हमें शांति के लिए भी उसी हिम्मत और हौसले से काम करना है जिससे हमने हमले का सामना किया था।"

—लाल बहादुर शास्त्री

ताशकंद से अंतिम संदेश, 10 जनवरी, 1966

आभार

आप सुधि पाठकों के समक्ष लाल बहादुर शास्त्री सरीखे बेहद सरल, सच्चे राष्ट्रभक्त और लोकतंत्र के मसीहा का संक्षिप्त जीवनचरित प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार खुशी का अनुभव हो रहा है। इस पुस्तक को लिखने का अवसर देने के लिए मैं 'नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया' का हृदय से आभारी हूँ। मेरी इस पांडुलिपि को पुस्तक रूप में लाने के क्रम में ट्रस्ट के हिंदी संपादक श्री दीपक कुमार गुप्ता का भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने पांडुलिपि को काफी तन्मयता से पढ़ा और उसमें अनेक वांछित सुधार किए। उन्हीं के सद्प्रयास से लाल बहादुर शास्त्री नेशनल मेमोरियल ट्रस्ट, नई दिल्ली के सौजन्य से शास्त्री जी के अनेक दुर्लभ फोटो उपलब्ध हो सके, जिनका इस पुस्तक में उपयोग किया गया है। पांडुलिपि में सुधार-संशोधन एवं फोटो उपलब्ध कराके शास्त्री जी के सुपुत्र श्री अनिल शास्त्री ने जो सहयोग किया है इसके लिए हम उनके अनुगृहीत हैं। शास्त्री जी के छोटे सुपुत्र श्री सुनील शास्त्री के सहयोग का भी मैं आभारी हूँ।

राष्ट्रबंधु

12. 12. 2012

प्रधानमंत्री बनने पर राष्ट्रपति राधाकृष्णन की बधाई

1. सुबह

धर्म शास्त्रों में प्रयाग की महिमा का वर्णन विस्तार से मिलता है। गंगा, यमुना एवं अदृश्य सरस्वती का संगम सब तीर्थ स्थानों से श्रेष्ठ तीर्थराज प्रयाग संबोधन से गौरव पाता है। हर 12 वर्ष बाद महाकुंभ एवं 6 वर्ष बाद अर्द्ध कुंभ का मेला लगता है लेकिन मकर संक्रांति का मेला हर साल लगता है, जिसमें देश-विदेश से हजारों-हजार की संख्या में लोग सम्मिलित होते हैं और संगम में डुबकी लगाकर अपनी मनोकामना पूरी करते हैं। इसी मनोकामना से 14 जनवरी, 1905 को मकर संक्रांति पर एक युवा दंपती अपने तीन-साढ़े तीन माह के पुत्र को लेकर प्रयाग गंगा स्नान के लिए आया। यहाँ की भीड़ का सैलाब देखकर चकित दंपती किसी प्रकार हिम्मत जुटाकर भीड़ को चीरते, किले के पीछे से जाने लगा। तट पर पहुँचा ही था कि भीड़ का ऐसा रेला आया कि उनके हाथ से उनके जिगर का टुकड़ा छिटककर गिर गया और अदृश्य हो गया। दोनों व्याकुल होकर रोते-बिलखते अपने लाड़ले को ढूंढ़ने में लग गए, लेकिन पता न चल पाने पर निराश होकर कई घंटे बाद मेले में तैनात पुलिस को सूचित किया। पुलिस बल भी प्रयासरत हो गई। लेकिन बच्चे का पता न चल पाने से निराश एवं दुखी दोनों तट पर आते-जाते नाव को अपलक देखते रहे कि कहीं उनका लाल दिख जाए। कभी मन में यह आशंका आने पर कि कहीं वह गंगा मैया की भेंट न चढ़ गया हो उनका मन दुख-विषाद

से और अधिक भर जाता था। लेकिन आशा नहीं छोड़ी। तभी एकाएक संगम से आती एक नाव पर पर एक टोकरी में एक नन्हा-सा बालक दिखाई पड़ा। उसे देखकर वह पानी में कूद पड़े और नाव पर चढ़कर उस बच्चे को अपना कहकर उठाने लगे, लेकिन वहाँ एक अलग ही दृश्य उपस्थित हो गया। जिसकी टोकरी में वह बालक था वह निःसंतान ग्वाला इस बच्चे को माँ गंगा का वरदान मानकर देने से इनकार कर दिया। काफी अनुनय-विनय करने एवं पुलिस के हस्तक्षेप और माँ द्वारा यह साबित करने पर कि वह बच्चा उनका ही है ग्वाले को विवश होकर देना पड़ा, लेकिन इस बीच उसने बच्चे को जो दूध पिलाया था तथा बच्चे द्वारा गंदे किए गए कपड़े का वास्ता देकर क्षतिपूर्ति माँगने लगा। बालक के पिता द्वारा उसकी एवज में नया ऊनी शाल और कुछ द्रव्य देने पर इस पूरे दृश्य का पटाक्षेप हुआ। वह नन्हा बालक, गंगा माँ का वरदानी, जो कालांतर में देश का प्रधानमंत्री बना, वह था लाल बहादुर शास्त्री, और युवा दंपती उनके पिता शारदा प्रसाद और माँ राम दुलारी थी।

शारदा प्रसाद का विवाह मिर्जापुर निवासी हजारी लाल की ज्येष्ठ पुत्री राम दुलारी देवी के साथ हुआ था। हजारी लाल मुगलसराय में ज्वाइंट रेलवे ब्वायज स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। शास्त्री जी का जन्म मुगलसराय में ही 2 अक्तूबर, 1904 को हुआ। शारदा प्रसाद जी उन दिनों इलाहाबाद के कायस्थ पाठशाला में अध्यापक थे। दुर्योग से जब शास्त्री जी एक-डेढ़ वर्ष के थे तो शारदा प्रसाद जी का प्लेग से देहांत हो गया। यह राम दुलारी पर बहुत बड़ा वज्रपात था। वह असहाय हो गईं। उनके सामने सबसे बड़ी समस्या बच्चों के पालन-पोषण की थी, क्योंकि जिनके सहारे परिवार की गाड़ी चलती थी वही अब नहीं रहा। आय का अन्य कोई साधन नहीं था। इसलिए राम दुलारी ने अपने पिता के पास मुगलसराय में रहना ही उचित समझा। यहीं पर बालक

जननी जन्मभूमि : पैतृक घर का पिछला हिस्सा

लाल बहादुर का शैशव काल बीता। उनकी जब पढ़ने की उम्र हुई तो यहीं पर उनका दाखिला कराया गया।

पाँच-छह वर्ष की अवस्था में लाल बहादुर को पढ़ने के लिए स्कूल में प्रवेश दिलाया गया। स्कूल गाँव से कुछ दूर था। तीन-चार लड़के एक साथ आते-जाते थे। स्कूल से छुट्टी के बाद नन्हा भी चला जा रहा था कि उसने देखा, उसके कुछ साथी इधर-उधर देखकर कह रहे हैं, "मौका अच्छा है। बगीचे की देखभाल करने वाला नहीं है।"

बच्चों को मनमानी करने का सुअवसर मिल गया। वे पेड़ों पर चढ़ गए। कुछ फल तोड़े, लेकिन ज्यादा दिलचस्पी डालियों को हिलाने और कूदने में ली। तभी बाग का माली आया। चौकन्ने और सावधान लड़के भाग गए। पकड़ में आया वह नन्हा बालक, जिसने फल तोड़ने की बजाय गुलाब का एक सुंदर फूल तोड़ा था। माली का गुस्सा शेष

बच्चों पर तो उतर नहीं सका क्योंकि वे तो नौ-दो-ग्यारह हो गए थे। पकड़ में आए इस नन्हे को उसने तानकर एक तमाचा मारा। यह छोटा-सा बालक रोने लगा और बोला, "तुम नहीं जानते, मेरा बाप मर गया है फिर भी तुम मुझे मारते हो। दया नहीं करते।"

अपने पिता जी के न रहने पर बहुत दुखी नन्हे ने अपेक्षा की थी कि उसे लोगों की सहानुभूति मिलेगी, प्यार मिलेगा। फूल और वह भी केवल एक फूल तोड़ लेने की ज़रा-सी गलती के लिए क्षमा मिलेगी। लेकिन हुआ आशा के विपरीत, मिला एक कष्टकारी तमाचा।

बागवान ने सुबकते हुए नन्हे को वहीं खड़े देखा तो उसे यह अखरा कि लड़का भागा नहीं, डरा नहीं और उसका सामना कर रहा है, जहाँ था वहीं रहकर। कुछ ऐसा ही बागवान ने सोचा होगा और तानकर एक चाँटा और जड़ दिया, यह कहते हुए कि "जब तुम्हारा बाप नहीं है तब तो तुम्हें ऐसी गलती नहीं करनी चाहिए। अधिक सावधान रहना चाहिए। तुझे तो नेकचलन और ईमानदार बनना चाहिए।"

उस दिन से लाल बहादुर के मन में यह बात घर कर गई कि जिस लड़के के पिता नहीं होते हैं, उसे अधिक सावधान रहना चाहिए। ऐसे निरीह बालक को किसी से प्यार पाने की आशा नहीं रखनी चाहिए। कुछ लेने के लिए लायक बनना चाहिए और लायक बनने के लिए परिश्रम करना चाहिए। परिश्रम भी थोड़ा या कभी-कभी नहीं, ज्यादा और लगातार जरूरी है। बिना परिश्रम कुछ पाने की आशा व्यर्थ है।

विधवा माँ का बेटा उसकी आशाओं का आधार था, जिस पर वह बीज-वपन कर रही थी, भविष्य के सुनहरे सपने देख रही थी और इन सपनों को साकार करने के लिए बिना थके काम में जुटी रहती थी। माँ इतनी गरीब थी कि सिवा आशीर्वाद के अपने बेटे को कुछ नहीं दे सकती थी। आशीर्वाद माने शून्य आशीर्वाद के सहारे बैठे रहे तो कुछ नहीं होगा। आशीर्वाद के शून्य को पीछे रखने के लिए खुद आगे

आना पड़ेगा, तब आशीर्वाद दशमलव की प्रणाली से अपना प्रभाव दिखाएगा। आशीर्वाद के सहारे हाथ पर हाथ धरे बैठने से यथास्थिति नहीं बदलेगी। नन्हे ने इसे समझ लिया। अपनी उन्नति के लिए उसे ही कोशिश करनी होगी। उसे अपनी कल्पनाओं को साकार करना होगा, क्योंकि सोचते रहने से अवसर और समय चला जाएगा।

छठी कक्षा पास करने के बाद बालक लाल बहादुर को अपने मौसा रघुनाथ प्रसाद जी के यहाँ बनारस में रहने का अवसर मिला। रघुनाथ प्रसाद जी ने हरिश्चंद्र हाईस्कूल में उनका नाम लिखवाया, लाल बहादुर वर्मा। सातवीं कक्षा में लाल बहादुर ने अपने नाम के आगे लिखा वर्मा शब्द हटवा दिया।

इस प्रकार उन्होंने स्वयं को छोटे दायरे से बाहर कर लिया। नन्हे ने कहीं पढ़ा था, 'नानक नन्हे ह्वै रहो, जैसे नन्ही दूब। और रूख सूख जाएँगे, दूब खूब की खूब।'

अपने कद पर अब वह गर्व करने लगा। लंबे और तगड़े बच्चों को चिढ़ाने पर इससे पहले उसे अफसोस होता था, वह खत्म हो गया।

बड़े की बजाय छोटे अक्षर लिखने का निश्चय नन्हे ने किया। उसने सुलेख लिखा, कम जगह में महत्त्वपूर्ण।

गुरु निष्कामेश्वर मिश्र ने एक बार शाला के विद्यार्थियों को पिकनिक पर ले जाने के लिए परस्पर चंदा लाने को कहा। लाल बहादुर से जब नियत चंदा माँगा गया तो उसने अपनी विवशता बताई और कुछ धन देते हुए कहा, "मेरे पास कुल जमापूँजी यही है, इससे अधिक मैं नहीं दे सकता। चाहें तो मुझे न ले जाएँ।"

लेकिन उनके साथी लाल बहादुर को साथ लेकर ही गए, क्योंकि उनके बिना पिकनिक का मज़ा अधूरा रहता।

एक बार उन्हें बनारस से गंगा पार कर अपने घर रामनगर जाना था और जाने के लिए किराया नहीं था, सड़क पर चलने वाले किसी

वाहन या गंगा में चलने वाली नौका को देने के लिए। लेकिन उस बालक को कोई गम नहीं, छरहरे शरीर में अद्‌भुत उत्साह था। बिना किसी को कहे वह कूद पड़ा बहती गंगा में। यह गंगापुत्र (पंडा नहीं) तैराकी में मल्लाहों की हिम्मत को भी मात दे गया और सकुशल अपने गाँव पहुँच गया। इस प्रसंग को शास्त्री जी ने बाद में लिखा, 'अंधेरा हो चला था। मुझे घर जाना था और पास में जाने के लिए पैसे नहीं थे। अतः मैंने तैरकर ही घर पहुँचने का निश्चय किया और गंगा में कूद पड़ा। सभी लोग आश्चर्यचकित रह गए। नौका पर सवार लोग कहने लगे—भला इस लड़के को देखो, अकेले ही तैर रहा है!

इस प्रकार शास्त्री जी ने झंझटें झेलीं, रोकर नहीं, हँसकर। निवेदन में दूसरों के आगे घिघियाकर नहीं, रिरियाकर नहीं, खुशी से, बिना किसी से सहायता की याचना किए। बाग के मालिक से उन्होंने कहा था, "तुम नहीं जानते..." वह अंतिम था, चाँटे की पीड़ा उन्हें सजग करती रही।

सुमंगल प्रकाश जी ने बताया है कि स्कूल में पढ़ने के लिए फीस माफ हो जाने पर भी थोड़े-बहुत पैसों की जरूरत उन्हें पड़ती थी। पहनने की ड्रेस को ठीक-ठाक रखने के लिए उन्हें रोज कपड़े साफ करके उसको प्रेस करना पड़ता था। किताबें-कापियाँ जुटानी पड़ती थीं।

बचपन में लाल बहादुर के जूते जब फट जाते तो नए मिलने की व्यवस्था नहीं थी। उनको काम चलाने लायक बनाने के लिए फट जाने पर सिलना पड़ता था। अपने सारे शौकों को तिलांजलि देकर लाल बहादुर उन दिनों अपने पुराने जूतों से ही काम चलाते थे। लोगों के पास अच्छे, नए जूते होते, उनके लिए अपने पुराने जूते ही अच्छे थे। जब जूते ज्यादा ही फट जाते तो भी वे अपनी माँ से पैसे माँगकर उनको अधिक परेशान नहीं करते थे।

कभी-कभी सारे दिन, बिना खाए रह लेते थे। सुबह का थोड़ा खाना

बहुत मानते थे। बाहर का खाना न खाना उनकी मजबूरी थी। उनके पास पैसे नहीं होते थे। जब भूख लगती थी, तब वे स्कूल में होते थे। शाम को ही घर आने पर भोजन मिलता था।

शुरू से ही लाल बहादुर ने अपने कर्तव्य के प्रति सावधानी बरती थी। फीस माफ हो इसके लिए मन लगाकर पढ़ना पड़ता था, ताकि प्रथम स्थान प्रतिवर्ष बना रहे। इसके लिए उनको अपने साथियों से किताबें मिल जाती थीं और बदले में उनको अपने साथियों को शिक्षक बनकर पढ़ाना पड़ता था।

लाल बहादुर का अँग्रेजी वाचन स्पष्ट और शुद्ध था। इंसपेक्टर के मुआइने के समय उनसे ही शिक्षक मॉडल लेशन के तौर पर वाचन कराते थे। स्वयं को शिक्षकों का प्रिय बनाकर अपनी लगन द्वारा उन्होंने कृपापात्रता प्राप्त की थी।

सातवीं कक्षा से ही लाल बहादुर और त्रिभुवन नारायण सिंह सहपाठी थे। यह बात सन् 1917 की है। दोनों तब गुरुवर निष्कामेश्वर मिश्र जी से पढ़ते थे। दोनों ही को गुरु जी का अगाध स्नेह प्राप्त था। त्रिभुवन नारायण सिंह जी ने बताया है कि शास्त्री जी तब भी दुबले-पतले थे, लेकिन थे बहुत परिश्रमी। उनके कपड़े सादे लेकिन साफ़ होते थे। शारदा प्रसाद नामक एक शिक्षक के पुत्र को शारदा का प्रसाद पाने के लिए कठोर साधना करनी पड़ती थी।

आर्थिक अभाव के चलते लाल बहादुर ने स्वनियंत्रण का रास्ता अपनाया था और अपना संपर्क अमीरों से रखने में वे सावधान रहते थे। वे अपना अधिक समय पुस्तकालयों में गुजारते थे। नागरी प्रचारिणी सभा में लाल बहादुर त्रिभुवन नारायण सिंह के साथ जाते थे। वहीं उन्होंने बंकिमचंद्र चटर्जी, रमेशचंद्र दत्त और भारतेंदु हरिश्चंद्र का साहित्य पढ़ा।

वाराणसी में ईश्वरगंगी में आचार्य कृपलानी ने गाँधी आश्रम

स्थापित किया। इसमें गाँधी साहित्य प्रचुरता में संग्रहीत और सुलभ था। लाल बहादुर ने स्वाध्याय से इसका भरपूर लाभ लिया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र हाई स्कूल में लाल बहादुर ने सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बहुत रुचि ली। उनके शिक्षकों में पंडित निष्कामेश्वर मिश्र और बेनीप्रसाद गुप्त, दोनों ही कुशल मूर्तिकार की भूमिका निभाकर उनके स्वरूप को सजाने-सँवारने में दत्तचित्त थे। इन दोनों ने लाल बहादुर के पितृ-स्नेह-वात्सल्य से वंचित रहने के अभाव को बहुत अंशों में पूरा किया।

निष्कामेश्वर मिश्र लाहौरी टोला में रहते थे। गुरु-माता भी लाल बहादुर को घर बुलातीं और 'बहादुर बेटा' कहकर पुकारती थीं। घर में हर नई चीज़ बहादुर बेटा को दी जाती। वे इस परिवार के एक प्रिय सदस्य थे।

शास्त्री जी के गुरुभाई राधेकृष्ण मिश्र ने एक अद्‌भुत घटना का उल्लेख किया है। 'लगभग सन् 1920 की बात है कि मैं (राधाकृष्ण) अपनी माता जी के साथ शास्त्री जी के मौसा रघुनाथ जी के निवासस्थान पर दारानगर गया था। लौटती बार लाल बहादुर हम लोगों के साथ आए। रास्ते में इक्केवाला अपने घोड़े को अशालीन शब्दों से अलंकृत कर रहा था। लाल बहादुर ने कई बार इक्केवाले को मना किया कि इनके साथ जनानी सवारी है, गाली-गलौच मत करो। किंतु वह अपनी आदत से लाचार था। थोड़ी ही देर बाद वह उन गंदे शब्दों का फिर उच्चारण करने लगा। शास्त्री जी का चेहरा तमतमा उठा। मुझे भी बहुत क्रोध आया किंतु कोई कुछ बोला नहीं।

'ज्ञानवापी पहुँचकर इक्केवाले को जब लाल बहादुर तय भाड़ा देने लगे तो उसने लेने से इनकार कर दिया और कहने लगा कि सवारी भारी है। इससे और अधिक किराया लेंगे (राधाकृष्ण की माता जी पं. निष्कामेश्वर मिश्र की पत्नी स्थूलकाय थीं)।

'लाल बहादुर जी को बहुत बुरा लगा और उनकी सहनशीलता जवाब दे गई, क्योंकि इक्केवाले की बदमाशी का पानी सिर के ऊपर से बहने लगा था। लाल बहादुर ने उत्तर दिया कि "भाड़ा तय करते समय भी यही सवारी मौजूद थी, अब ज्यादा माँगने का तुम्हें कोई हक नहीं है।"

'इसके उत्तर में न जाने उसने क्या कहा, मैंने सुना नहीं। माता जी के साथ मैं आगे बढ़ चुका था। आदत से मजबूर इक्केवाले ने फिर अपशब्द कहे तो लाल बहादुर ने चार-पाँच थप्पड़ जड़ दिए। तब वह छोटे कद के बलिष्ठ बहादुर के आगे गिड़गिड़ाने लगा–"नहीं बाबू, माफ़ किहल जाए, गलती भएल!'

फिर भी, लाल बहादुर ने उसको और अधिक किराया देकर अपनी सदाशयता का परिचय दिया।

कद से छोटे किंतु बहुत फुर्तीले लाल बहादुर का रुआब उनके अपने साथियों पर भी था।

उनके बाल्यकाल में एक पिकनिक बड़ी चर्चित हुई थी। चुनार (जिला मिर्जापुर) में राम सरोवर का प्रसिद्ध मेला देखने की जब योजना बनी तो कॉलेज के प्राचार्य मिश्र ने टालने के लिए अटपटी और कठिन शर्त रखी कि यदि इसमें प्रतिभागी पैदल चुनार जाएँ तो छुट्टी दी जाएगी, अन्यथा नहीं। पैदल जाने के लिए तैयार होने वालों में लाल बहादुर भी एक थे।

बाल्यावस्था में उन्हें गुलाबजामुन और कम पकी मलाई बहुत भाती थी। जब मिलती तो बहुत प्रसन्न होकर खाते थे।

बेनीप्रसाद गुप्त ने लाल बहादुर को नौवीं कक्षा में पढ़ाया था। उनको गुप्त जी ने पिकनिक और अभिनय में रुचिसंपन्न बनाया था। माधव शुक्ल का नाटक 'महाभारत' विद्यालय द्वारा रामकटोरा में अभिमंचित किया गया था। इसमें लाल बहादुर ने लुहार का किरदार

अभिनीत किया था। रामकटोरा के इस नाटक को बहुत सफल माना गया था। लाल बहादुर के गाए गीत, 'इतने दिना पर सुधने गुसइयाँ, हम के दिहेन रुजगार' की चर्चा बहुत दिनों तक चली।

डी.एल. राय के लिखे 'शाहजहाँ' नाटक में भी उन्होंने प्रशंसनीय अभिनय किया था।

श्रमदान करने में भी उनकी लगन थी। इससे समाज में उनका आदर-सम्मान था। उन्होंने श्रमदान करने वाले साथियों का एक संगठन तैयार करके कॉलेज के खेल मैदान को समतल कराया था।

बनारस में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का भाषण होने को था। लाल बहादुर आयोजन स्थल से बहुत दूर थे। पैदल जाने से भाषण सुन पाना संभव नहीं था। तिलक जी के दर्शन दूर से ही सही, करने की प्रबल इच्छा थी। इस जरूरत और मजबूरी में उन्होंने किराया भर का धन कर्ज में लिया। कर्ज लेकर उन्होंने भूख शांत नहीं की, क्योंकि भाषण सुनना अपरिहार्य था। यह कर्ज उन्होंने कसमसाकर कंजूसी करके बचाया और अपनी छात्रवृत्ति से अदा किया। उनकी राष्ट्रभक्ति की यह पहली घटना थी।

मंजिल की इतनी मजबूरियों का राही जैसे-तैसे पढ़ाई करके दसवीं कक्षा में आया। माँ ने अपेक्षाएँ की थीं कि दसवीं पास करके लाल बहादुर कमाई करेगा और गरीबी में उनकी जिम्मेदारी कम हो जाएगी। विधवा और वह भी गरीब के दुर्दिन दूर हो जाएँगे, तभी एक नई बात हो गई।

सन् 1921 में गाँधी जी वाराणसी आए। वहाँ एक सभा में गाँधी जी ने अपने उद्‌बोधन में कहा, "भारत माँ दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई है। इन बेड़ियों को काटने के लिए जो अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार हों, ऐसे नौजवानों की जरूरत है।"

लाल बहादुर ने भाषण सुना, इसका उन पर असाधारण प्रभाव

पड़ा। यह आह्वान उन्होंने अपने लिए माना।

जो पढ़ाई मजबूरियों में भी जारी थी, अचानक छूट गई। गाँधी जी ने असहयोग आंदोलन चलाया। देशवासियों से उन्होंने अनुरोध किया था कि वे अँग्रेजी सरकार का विरोध करें। उनकी पुकार का जादुई प्रभाव हुआ। विद्यार्थियों ने पढ़ाई छोड़ दी। कठिनाई और खुशामद से प्राप्त जमींदार, ताल्लुकेदार, रायबहादुर जैसी उपाधि वालों ने अपनी उपाधियाँ अँग्रेजों को यों ही लौटा दीं। दयालु हृदय के संवेदनशील व्यक्तियों ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई और राष्ट्रव्यापी आंदोलन के खर्चे को पूरा करने के लिए दिल खोलकर दान दिया। भावुक महिलाओं ने अपने परमप्रिय आभूषण समर्पित कर दिए। सत्रह वर्षीय लाल बहादुर ने असहयोग आंदोलन चलाने के लिए अपनी पढ़ाई छोड़ दी। भारत माँ के लिए उन्होंने अपनी जननी पर और अधिक दुख सहने का भार लाद दिया।

लोगों ने लाल बहादुर को बहुत समझाया लेकिन वह अपने निश्चय से नहीं डिगे। गुलामी को उन्होंने गरीबी का कारण माना। उन्होंने देश की गुलामी मिटाने के लिए गाँधी जी के आह्वान को हृदयंगम किया और उनका अनुगमन किया। गाँधी जी की आवाज़ पर वे माँ को रात में अकेले छोड़ घर से निकल गए। गाँधी जी के पीछे-पीछे चलकर वे जेल गए। अपनी माँ के सामने आसन्न संकटों को जानकर भी उन्होंने अपने कदम पीछे नहीं किए।

2. पूर्वाह्न

असहयोग आंदोलन में लाल बहादुर कूद पड़े, उनको जेल भेज दिया गया। अढ़ाई साल की सज़ा काटकर लाल बहादुर बनारस लौटे। उन्होंने पढ़ाई के टूटे धागे को जोड़ने का प्रयत्न किया। विदेशी चीज़ों के इस्तेमाल में उनकी रुचि नहीं रह गई थी। स्वदेशी के प्रति बढ़े लगाव की वजह से उन्होंने अँग्रेजी पद्धति की दसवीं कक्षा की पढ़ाई फिर से करना पसंद नहीं किया। देशभक्तों द्वारा स्थापित और संचालित काशी विद्यापीठ में स्वदेशी ढंग पर दी जाने वाली शिक्षा ग्रहण की। दर्शन शास्त्र का अध्ययन उन्होंने काशी विद्यापीठ में किया। यहाँ स्नातक होने पर 'शास्त्री' और परास्नातक होने पर 'आचार्य' की उपाधि दी जाती थी।

लाल बहादुर सही अर्थों में विद्यार्थी थे। ज्यों-ज्यों उनकी विद्या उन्हें प्रेरित करती रही वे अधिक विनय संपन्न और विनम्र बनते गए। उनका जीवन सादा और स्वभाव सरल था पर विचार बहुत ऊँचे थे। आगे बढ़ना और जोश में वाद-विवाद में भाग लेना उनके स्वभाव में नहीं था। छात्र आंदोलन में भी उनकी रुचि कम थी। हाँ, विद्यार्थी परिषद द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में वे बोलते थे। उनके भाषण नपे-तुले और प्रभावशाली होते थे। स्वभाव से वे चुपचाप रहने वाले, नम्र और बड़े मिलनसार थे और इस कारण से विद्यापीठ के विद्यार्थियों में काफी लोकप्रिय थे। छात्र जीवन में उन्हें भोजन बनाने का अवसर मिलता था। आरंभिक अड़चनों की चर्चा करते हुए लाल बहादुर ने पी. टंडन से कहा था, "उन दिनों दाल पकाना बहुत मुश्किल होता था। दाल गलने में समय लगता था। लेकिन धीरे-धीरे दाल पकाते-पकाते मेरा अभ्यास सफल होने लगा।" उनके सहयोगियों का कहना था कि लाल बहादुर जी जब दाल पकाते तो उसका स्वाद बढ़ जाता था।

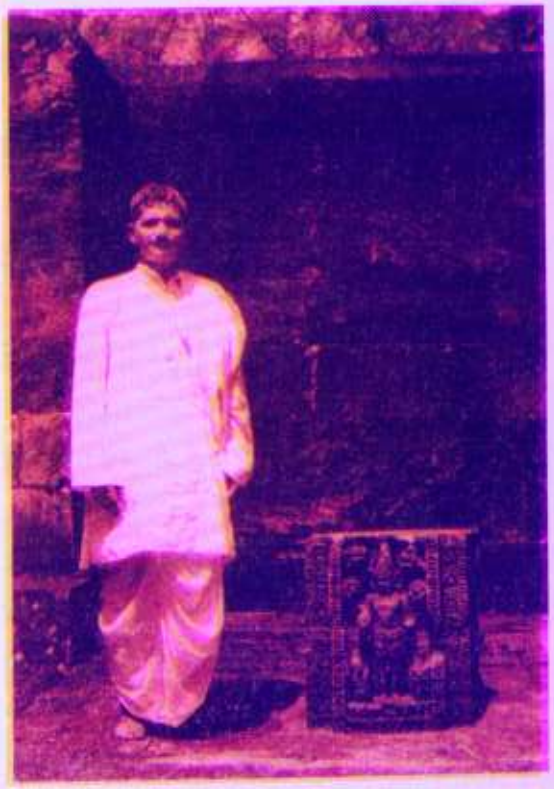

युवावस्था में

इसी प्रयोग में सुमंगल प्रकाश जी ने अपनी पुस्तक 'वह नन्हा-सा आदमी' में लिखा है कि 'दाल फेडरेशन में सभी छात्रों की दाल एक जगह बनती थी। बारी-बारी से सबको दाल बनानी पड़ती थी। जब लाल बहादुर दाल बनाते थे तो वह बहुत स्वादिष्ट होती थी।' दाल फेडरेशन में अधिकांश बच्चे शहर में रहने वाले छात्र होते थे, जो दोपहर में अपने-अपने घर से जाकर एक जगह भेजन की व्यवस्था करते थे।

छोटा समझा जाने वाला काम भी शास्त्री जी के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता था। वे उसे बहुत रुचि से करते थे।

विद्यापीठ राष्ट्रसेवा में अग्रणी था। सन् 1923 में, गया में काँग्रेस अधिवेशन आयोजित था। इसमें स्वयंसेवकों की आवश्यकता विद्यापीठ ने पूरी की। कार्यकर्ताओं में शास्त्री जी भी वहाँ भेजे गए थे। इन स्वयंसेवकों ने खूब जिम्मेदारी सँभाली। शास्त्री जी ने भी महीने भर तक वहाँ मिट्टी खोदी और अधिवेशन की व्यवस्था में सहयोग दिया।

सन् 1925 में लाल बहादुर 'शास्त्री' की परीक्षा के विद्यार्थी थे। डॉ. संपूर्णानंद जी उनके शिक्षक थे। अन्य आचार्यों में डॉ. भगवान दास लाल बहादुर के सबसे प्रिय शिक्षक थे। 'शास्त्री परीक्षा' में लाल बहादुर की प्रथम श्रेणी आई। विद्यापीठ ने लाल बहादुर को 'कर्तव्यनिष्ठ राष्ट्रसेवक' कहा। दीन-दुखियों की सेवा में उनके समय का सबसे अच्छा उपयोग होता था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भी लाल बहादुर छद्म रूप से एक अवैध पत्रिका की हस्तलिखित प्रतियाँ निकालते थे। इसमें समाचार और विचार रहते थे। श्री अलगू राय शास्त्री, श्री राजाराम एवं त्रिभुवन नाथ सिंह उनके सच्चे साथी थे।

शास्त्री जी मातृभूमि सेवा को महत्व देते थे। लेकिन उनकी माँ किसी भी अन्य माँ की तरह एक उम्मीद अपने बेटे से लगाए हुए थीं–

घर में बहू लाने की। उनको अपनी जननी की इच्छापूर्ति करने पड़ी। उनकी अनुपस्थिति में उनकी माँ को कोई दूसरा चाहिए था जो उनके साथ रहे। माँ की इच्छा जान शास्त्री जी ने शादी के लिए हाँ कर दी। 16 मई, 1928 को ललिता देवी से उनका विवाह हुआ। रिवाज के अनुसार वैसे तो उन्हें काफी दहेज मिलता लेकिन उन्होंने केवल एक चरखा और खादी के कुछ कपड़े ही स्वीकार किए। ससुराल में ऐसे दहेज विरोधी दामाद की बहुत सराहना की गई। यह चर्चा सालों-साल चली।

शास्त्री जी अपने घर पर पत्नी के साथ बहुत कम समय तक रह पाते थे। वे प्रायः घर पर और बाहर भी बहुत अधिक व्यस्त रहते थे। अपनी माँ की सेवा में पत्नी को लगाकर वे निश्चिंत हो गए थे।

शास्त्री जी ने 'सर्वेंट्स ऑफ दि पीपुल्स सोसाइटी' की ख्याति सुनी। इसके अध्यक्ष लाला लाजपतराय थे। इस संस्था के नियम कड़े थे। सदस्यों को अपना जीवन समर्पित करना पड़ता था। शास्त्री जी ने 25 वर्ष की अवस्था में इसकी आजीवन सदस्यता ग्रहण कर देश सेवा का व्रत ले लिया। लाला लाजपतराय मेहनती और ईमानदार शास्त्री जी को बहुत चाहते थे।

लाला लाजपतराय के देहावसान के पश्चात् बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन 'सर्वेंट्स ऑफ दि पीपुल्स सोसाइटी' के अध्यक्ष चुने गए। टंडन जी ने यह दायित्व अपने विश्वस्त शास्त्री जी को सौंप दिया। वे शास्त्री जी से पूर्णतया निश्चिंत थे और आश्वस्त भी।

टंडन जी के कारण इस सोसाइटी का कार्यालय लाहौर से इलाहाबाद स्थानांतरित हो गया। परिणामतः शास्त्री जी भी सपरिवार इलाहाबाद आ गए। निर्वाह के लिए शास्त्री जी को एक सौ रुपया मासिक मिलता था। लगन से शास्त्री जी ने इस तनख्वाह से गुजारा चलाया और निष्ठापूर्वक कर्तव्य पूर्ण किए।

भोजन किए बिना, परिवार की चिंता से निश्चिंत होकर वे घर से निकल जाते और काफी रात गए घर लौटते। उनके खाने-पीने और सोने का समय निर्धारित नहीं था। किसी ने खिलाया तो ठीक, वरना बिना खाए और किसी से बिना कहे अपने काम में जुटे रहते थे। उनके घर अतिथि आ जाते तो स्वयं और पत्नी को परेशानी में डालकर भी उनकी व्यवस्था पूरी तरह करते थे।

स्वतंत्रता से पूर्व, मध्यम श्रेणी के परिवार की आर्थिक और सामाजिक स्थिति का आकलन शास्त्री जी को लेकर किया जा सकता है। किसी देशभक्त के जीवन की कठिनाइयों और सहनशीलता के बारे में शास्त्री जी से बेहतर कोई उदाहरण नहीं मिल सकता।

बात सन् 1931 की है। पुरुषोत्तम पार्क के एक जुलूस में लोग जा रहे थे जिसमें शास्त्री जी को संयुक्त प्रांतीय सरकार के आपातकालीन अध्यादेश की अवहेलना कर भाषण देना था। पुलिसवालों ने दमन किया। भीड़ की उतावली से धक्के लगे तो असमर्थ लोग घायल हो गए। भीड़ में श्रीमती स्वरूप रानी (सुपत्नी मोती लाल नेहरू) भी थीं। शास्त्री जी के परिवार के लोग भी थे। शास्त्री जी और उनके परिवार के लोगों ने पं. जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूप रानी की बहुत सेवा की। जवाहरलाल जी की शास्त्री जी से पहचान घनिष्ठ होती गई। जब जवाहरलाल को शास्त्री जी की सेवाभावना और राष्ट्रभक्ति का अनुभव हुआ उसमें परस्पर सहानुभूति और एक-दूसरे के प्रति सद्भाव का अंकुरण हुआ। स्नेह-सिंचन से दोनों में आत्मीयता उत्पन्न हुई और इसका विस्तार दोनों के परिवार तक फैला। दोनों एक-दूसरे के घर आने-जाने लगे।

शास्त्री जी प्रायः आनंदभवन दिन में ग्यारह बजे तक पहुँच जाते और वहाँ जवाहरलाल जी के निजी पत्रों को खोलते और उनके उत्तर लिखते थे। यह परस्पर मैत्री और विश्वास का मामला था, ऊपर और

नीचे का नहीं। कालक्रम में दोनों की आपसी विश्वसनीयता बढ़ती गई। पं. जवाहरलाल नेहरू ने शास्त्री जी में भाई का भरोसा, मित्र की त्याग भावना और आत्मीय का समर्पण देखा। दोनों एक-दूसरे के पूरक बन गए। कमला जी (सुपत्नी जवाहरलाल नेहरू) और ललिता जी ने साथ-साथ महिलाओं के बीच जागृति-कार्यक्रमों में भाग लिया। पिकेटिंग की और स्वदेशी आंदोलन चलाए। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई और खादी के खुरदरे वस्त्र पहनने का सबसे आग्रह किया।

शास्त्री और नेहरू जी ने साथ मिलकर कामगारों के घरों में जाना शुरू किया। गाँव-गाँव जाकर किसानों से मिले और समाज से अलग-थलग रहने वाले हरिजनों को स्वतंत्रता की मुख्य धारा से जोड़ा।

अपनी सेवाओं के कारण शास्त्री जी जनवरी, 1936 में इलाहाबाद नगरपालिका के सदस्य चुने गए। उस समय वह मलाका में रहते थे। उन्होंने जन सुविधाएँ जुटाईं। वह अपने कार्य, आचरण एवं व्यवहार से सबके प्रिय बन गए थे। सही मायने में वह 'अजातशत्रु' थे। उन्हें समर्थकों ही नहीं, विरोधियों का सहयोग भी सुलभ था। इलाहाबाद में ही नागरिकों ने उन्हें जिला काँग्रेस कमेटी का अध्यक्ष बना दिया। उन्होंने किसानों से सरकार को लगान देने से मना किया। सरकार ने शास्त्री जी को अपने विरुद्ध देखा तो उन्हें कारावास में बंद कर दिया। न्यायालय ने उनको ढाई साल की सजा दी। इसका प्रतिरोध हुआ, जनाक्रोश फैलता गया। लेकिन इसके बरक्स शासन की दमन नीति भी चलती रही।

घर के सभी प्रियजनों को भगवान भरोसे छोड़कर आने वाली कठिनाइयों का सामना करने वे खुशी-खुशी जेल चले गए। जिस प्रकार उन्होंने शहर और जिले के आम आदमी को अपनाया था, वही नीति उन्होंने कैदियों के साथ बनाकर रखी। काम में जुटने और काम

करने की प्रेरणा देते रहने के कारण वे जेल में अधिकारियों के भी प्रिय बन गए। साथी कैदियों के साथ उनका व्यवहार बहुत अच्छा था। एक-दूसरे की सहायता करने की सहृदयता विस्तार लेती गई। शास्त्री जी ने अनपढ़ साथियों को वहाँ पढ़ाया और साक्षर कैदियों को देश-विदेश की जानकारियाँ दीं। इतना ही नहीं, इलाहाबाद जेल में देश के माने हुए गणमान्य नेताओं से उनका परिचय हुआ और उनके सान्निध्य में रहकर उनका समय बिना किसी चिंता के सहज व्यतीत होता था।

शास्त्री जी आठ बार जेल गए और उन्होंने कुल नौ साल जेल में बिताए। सन् 1932, 1934, 1941 और 1942 के आंदोलनों में उन्होंने गिरफ्तारी दी।

जेल में रहते हुए भी शास्त्री जी चिंतन और अध्ययन के लिए अवसर निकाल लेते थे। गाँधी जी के कहे अनुसार वे जेल के नियमों का पालन करते थे, फिर भी वे अपने लेखन के लिए समय निकाल लेते थे। जेल प्रवास में ही उन्होंने मदाम क्यूरी के बारे में पढ़ा और उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अत्यधिक प्रभावित होकर मदाम क्यूरी की जीवनी का हिंदी में अनुवाद किया।

शास्त्री जी को जेल में खबर मिली कि उनकी लाडली बेटी सख्त बीमार है। सह जेल-वासियों ने उनको घर जाने की सलाह दी। जेल के अधिकारी थोड़े उदार थे, इसलिए आवेदन देने पर पंद्रह दिन की पैरोल पर छुट्टी मिल गई।

पर दुर्भाग्य यह रहा कि शास्त्री जी जिस दिन घर गए उसी दिन उनकी दुलारी बिटिया सिधार गई। शास्त्री जी ने इसे दार्शनिक भाव से लिया और इसे विधि का विधान माना, लेकिन अधिक लोग यह कहने वाले थे कि रोग के शुरू होते ही उचित चिकित्सा नहीं की गई। शास्त्री जी को लगा कि जेल के अंदर ही उनको चैन मिल पाएगा।

लाडली बिटिया के असामयिक अकाल मौत ने उन्हें एकदम से मौन कर दिया। अंदर का सारा उत्साह, सारा उल्लास मर गया। पैरोल की छुट्टी की अवधि से पहले ही वे स्वयं जेल चले गए।

कुछ दिनों बाद उनके चिरंजीव की बीमारी का समाचार उन्हें जेल में मिला और वे पुनः पैरोल पर रिहा होकर बाहर आए। अवधि बीतने पर उनके पुत्र ने हठ की, कहा, "बाबूजी, न जाओ।" लेकिन शास्त्री जी ने पुत्र प्रेम के आगे कर्तव्य को प्रधानता दी और आँखों में आँसू लिये जेल चले गए।

श्री नरेश चंद्र सक्सेना ने उन दिनों की याद करके लिखा है : 'आजादी की लड़ाई के बड़े कड़े दिन थे। काँग्रेस का नाम लेना, गाँधी जी की बात करना एक अपराध से कम न था। टोपी पहनने वालों पर अंग्रेजी शासन के काले अफ़सरों की कड़ी निगाह रहती थी। सन् 1930, गाँधी जी ने नमक सत्याग्रह किया और उसमें पहली बार शास्त्री जी जेल गए। सन् 1942 के आंदोलन के जेल-जीवन की अंतिम कड़ी तक 12-14 वर्षों के बीच वे सात बार जेल गए और कुल मिलाकर 9 वर्ष कारागार के सींखचों में तनहाई में काटे, चक्की पीसी; पुलिस के डंडों की मार सहते रहे, किंतु इन कठोर यातनाओं के बाद भी उनका मूर्तिमान व्यक्तित्व झुका नहीं। जब वे नैनी जेल में थे तो उनकी पुत्री सख्त बीमार थी। सरकार उन्हें कुछ शर्तों पर रिहा करना चाहती थी किंतु शास्त्री जी को कोई शर्त मंजूर नहीं हुई। हार मानकर सरकार ने उन्हें पैरोल पर छोड़ा लेकिन उनके घर पहुँचने के दिन से पहले ही लड़की इस संसार से विदा हो गई। उनकी अंत्येष्टि के बाद उसी दिन वह जेल वापस लौट गए। वस्तुतः वे एक आदर्श कैदी थे, जिन्होंने जेल का अनुशासन कभी भंग नहीं किया। जेल की सुविधाएँ भी नहीं चाहीं और अपने आचरण की अमिट छाप हमारे ऊपर छोड़ गए।'

परिजनों के साथ प्रसन्न मुद्रा में

होली है! परिवार के साथ, 1962

3. अपराह्न

15 अगस्त, 1947–देश स्वतंत्र हुआ। गोविंद वल्लभ पंत के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में भी काँग्रेस का मंत्रिमंडल बना। विधायक शास्त्री जी उत्तर प्रदेश के गृहमंत्री बनाए गए। उन्होंने प्रांतीय रक्षक दल की स्थापना करके नागरिकों को स्थानीय सुरक्षा दायित्व सँभालने के प्रति सतर्क करना चाहा, जिसकी प्रतिक्रिया अच्छी रही।

सांप्रदायिक दंगों की आशंका में प्रांतीय रक्षक दल (पी.आर.डी.) की भूमिका राष्ट्रीय थी। शांति व्यवस्था, नागरिक स्वच्छता तथा सुरक्षा में शास्त्री जी बहुत सचेष्ट थे।

मंत्री पद पर पहुँचकर भी उन्होंने अपने पहनावे में कोई परिवर्तन करना जरूरी नहीं समझा। वही खादी की धोती और सादा कुर्ता। उनकी सादगी प्रभावित करती थी। जब उन्होंने अपनी बड़ी बिटिया कुसुम की शादी की, तब बारातियों ने कल्पना की थी कि शादी एक प्रदेश के गृहमंत्री की हैसियत के अनुसार ही होगी। कायस्थ परिवार में माँस-मदिरा का इंतजाम तो रहेगा ही। लेकिन शादी की दावत में सादा भोजन देखकर बाराती नाराज हो गए। एक ने कहा, "ब्राह्मणों के यहाँ शादी है क्या?"

शास्त्री जी ने शालीनता से उत्तर दिया, "भाई, हमारे संस्कार ही ऐसे हैं।"

ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जहाँ लोग उनको पहचान नहीं पाए। लोग मंत्री के तामझाम से उनको अलंकृत करते थे लेकिन उनकी सादगी प्रायः लोगों को भ्रम में डाल देती थी। एक बार ऐसा हुआ कि वे गृहमंत्री के रूप में आगरा जा रहे थे। स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए काफी लोग ट्रेन के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अधिकारी फर्स्ट क्लास के डिब्बे में उनको लेने गए, लेकिन निर्धारित कार्यक्रम के रहते हुए भी उनको न पाकर निराश हुए। उन्हें ऐसा लगा कि मंत्री जी नहीं आए।

आम आदमी की छवि : ट्रेन के तीसरे दर्जे में सफर

शास्त्री जी ट्रेन के तीसरे दर्जे के डिब्बे से उतरे और गेट से बाहर निकलने के लिए आगे बढ़े, तब एक कांस्टेबल ने उन्हें डाँट दिया, "खड़े रहो, पहले मंत्री जी निकल जाएँ तब बाकी लोग जाएँगे।"

शास्त्री जी चुपचाप एक ओर खड़े हो गए। अधिकारी निराश होकर आपस में बातें करते हुए जब गेट के पास आए तो शास्त्री जी को गेट के एक तरफ खड़े देखा। वे चकित रह गए, उनके मंत्री जी यहाँ खड़े थे। उन्होंने अपनी भूल सुधारने के लिए बड़ी तत्परता से उनका स्वागत किया तथा हार आदि पहनाए। इससे पहले कि शास्त्री जी आगे बढ़ें, उन्होंने मुस्कराते हुए उस कांस्टेबल को रोका, वह सन्न था। काटो तो खून नहीं, लेकिन शास्त्री जी ने हँसकर कहा, "मुझे खुशी है कि तुमने अपनी ड्यूटी अच्छी तरह निभाई है।" ऐसा कहते हुए वे आगे बढ़ गए। साधारण ओहदे का कांस्टेबल अपने मंत्री के असाधारण और सौम्य व्यवहार को देखकर भौंचक था।

केवल बड़ों को ही नहीं छोटों को भी अपनी शालीनता और सज्जनता से शास्त्री जी ने प्रभावित किया। वे सेवकों और कर्मचारियों को कभी डाँटते-फटकारते नहीं थे बल्कि उन्हें उनकी गलती का अहसास भर करा देते थे। वे किसी को दंडित नहीं करते थे, प्रायः क्षमा करने का स्वभाव था। इससे दोषी स्वयं को सुधारने का प्रयत्न करता था। वे स्वयं भी अपनी गलती को सुधारने की कोशिश करते थे।

एक बार शास्त्री जी सरकारी दौरे पर कार से जा रहे थे। उनकी कार से कोई जानवर साधारण रूप से घायल हो गया। ऐसे अवसर पर बड़े लोग अकसर अपने को नहीं उलझाते, न ही पीड़ित के प्रति सहानुभूति दिखाते अथवा सहायता करते हैं। शास्त्री जी ने कानून के अनुसार कार वहीं छोड़ दी और पैदल चलकर पुलिस स्टेशन पहुँचे। वहाँ के दीवान से मिले। दीवान ने रिपोर्ट नहीं लिखी और प्रतीक्षा

करने को कहा, दीवान जी ने एस.आई. के इंतज़ार में उनको एक घंटे तक रोके रखा। तब तक थानेदार साहब आ गए, वे शास्त्री जी को पहचानते थे। थानेदार ने सैल्यूट किया। दीवान को शास्त्री जी का परिचय मिल गया था। शास्त्री जी कुछ कहते, इससे पहले ही दीवान ने पूरी घटना बताकर क्षमा मांगी। कहते हैं 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'। शास्त्री जी ने कुछ नहीं कहा। उनके साथी चकित थे। शास्त्री जी की सज्जनता तथा सहिष्णुता ने दीवान जी को सुधार दिया।

न केवल मित्रों के लिए वरन् सभी के लिए शास्त्री जी उदार थे। एक बड़ी आबादी वाले प्रदेश के गृहमंत्री होकर भी उनमें गर्व नहीं था। इसलिए इसका प्रदर्शन भी नहीं था; न तड़क-भड़क से रहते थे और न आत्म प्रशंसा करते थे। उनकी पत्नी साधारण गृहिणी थीं। कपड़े धोतीं और भोजन बनाती थीं। वह जानती थीं कि उनके पति स्वयं को जनता का सेवक कहते हैं।

एक दिन सुहृद सुमंगल प्रकाश जी का आतिथेय शास्त्री जी ने किया। उनकी पत्नी घर पर नहीं थीं अतएव एक किशोर ने भोजन बनाया। पाक शास्त्र में कुशल होने का तो प्रश्न ही नहीं, वह किशोर ठीक तरह से इस विद्या से परिचित भी नहीं था। जरूरत पर भोजन बनाना जरूरी हो गया था। मजेदार बात तो यह थी कि सुमंगल प्रकाश जी को शास्त्री जी खिलाते चले गए और बचे-खुचे भोजन से उन्होंने अपनी भूख मिटाई।

उनकी सहनशीलता सीमारहित थी। किसी डॉक्टर के कहने पर उन्होंने अपने असली दाँत निकलवा दिए और जो दाँत लगाए गए वे भद्दे थे। जब कोई अच्छे दाँत लगवाने की बात कहता तो घुमा-फिराकर प्रस्तुत विषय पर चर्चा नहीं करते थे। वे यही कहते, "मेरे दाँतों में पायरिया हो गया था, इसलिए मैंने नए दाँत लगवा लिये हैं।" उन्होंने परोक्ष रूप से भी गलत दाँत लगाने वाले डॉक्टर को कुछ नहीं कहा।

गलती चाहे जिसकी हो शास्त्री जी प्रायः स्वयं को सुधारने लग जाते थे। ऐसे में किसी की हिम्मत नहीं थी जो उन्हें रोकता या विरोध करता। लोग जानते थे कि शास्त्री जी को जैसा पसंद होगा, वे करने लगेंगे। इससे सेवक और घर के लोग सतर्क होकर सावधानी से ठीक ही करने की कोशिश करते थे।

जब शास्त्री जी किसी पर नाराज होते थे तो 'तुम' से 'आप' कहने लगते थे। उनका 'आप' कहना ही लोगों को सावधान करने के लिए पर्याप्त होता।

सन् 1952 की बात है। नेहरू जी चाहते थे कि चुनाव का सारा काम शास्त्री जी सँभालें। इसके लिए शास्त्री जी को मंत्री पद छोड़ना था। शास्त्री जी ने पंत जी से कहकर यह पद त्याग दिया और पार्टी का काम देखने लगे। नेहरू जी शास्त्री जी की विश्वसनीयता, निष्ठा और कार्य से बहुत संतुष्ट रहते थे। अतः नेहरू जी ने 1957 के चुनाव की जिम्मेदारी भी इनको ही सौंपी। दिन में बीस घंटे काम और विश्वास में अप्रतिम शास्त्री जी का कोई विकल्प नहीं था।

मिर्जापुर के एक गाँव में चुनाव सभा थी। वहाँ माइक फेल हो गया। नेहरू जी नाराज हो गए, आपे से बाहर। भीड़ उनको घेरकर खड़ी हो गई। शास्त्री जी ने अशांत भीड़ को शांत किया। नेहरू जी आग-बबूला। सभा भंग। सभा स्थल से नेहरू जी चल पड़े। झट से कार तक पहुँचे और फुर्र से गाड़ी स्टार्ट हो गई। रास्ते में नेहरू जी को भूख लगी। गुस्से में कहने लगे, "यहाँ के लोगों ने खाने तक को नहीं पूछा, कैसे असभ्य हैं!"

शास्त्री जी ने उत्तर दिया, "आपकी नाराजगी से छुटकारा पाने की जल्दी में यह सब हुआ है, वरना प्रबंध तो था।"

रास्ते में जलपान के लिए जब नेहरू जी ने अपनी जेब टटोली तो पैसे नहीं थे, शास्त्री जी की जेब में कुछ पैसे थे। उस समय वही बहुत

थे। दोनों ने टोस्ट खाकर चाय पी। नेहरू जी ने शास्त्री जी की प्रशंसा करते हुए कहा, "क्या करूँ, आवेश को वश में कर ही नहीं पाता। मैं अमीर हूँ तो क्या गरीबी में भी तुम्हारी व्यवस्था से ही मेरी भूख मिटी है।"

शास्त्री जी ने कभी भी विद्यार्थियों को अपने चुनाव आंदोलन का पात्र नहीं बनाया। विद्यार्थियों का इसके लिए प्रस्ताव कई बार आया, परंतु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। ऐसा ही एक प्रस्ताव श्रीमती लखनपाल के पुत्र विजय कृष्ण ने रखा था कि वे इलाहाबाद के विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का जत्था बनाकर काम करना चाहते हैं। शास्त्री जी ने पढ़ाई के हित में जोश में होश बनाए की सलाह दी और उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।

चुनाव जीतने के लिए शास्त्री जी ने पार्टी की नीतियों का ही पालन किया। वायदों के हथकंडों का सहारा नहीं लिया, न ही कोई तिकड़म की। अपने चुनाव क्षेत्र के जसदा गाँव में वे एक चुनाव प्रचार के लिए गए तो लोगों ने माँग की कि, 'जसदा स्टेशन पर डाक गाड़ी रुका करे।'

शास्त्री जी की जगह कोई दूसरा होता तो तुरंत ही हाँ कह देता, फिर चाहे वह माँग पूरी करता या नहीं। शास्त्री जी ने समझाकर कहा, "भाई, जो माँग तुम लोगों ने की है, उसे दूसरे गाँववाले भी कर सकते हैं। फिर, अगर हम हर एक गाँव के स्टेशन पर गाड़ी खड़ी कराने लगे तो उससे तो पैसेंजर ही अच्छी होगी।"

लोगों को बात समझ में आ गई।

शास्त्री जी बाहर ही नहीं, अपने घर में भी बहुत प्रिय थे। दान-पुण्य, स्नेह आदि का आरंभ घर से ही होता है। कुछ लोग बाहर वालों के लिए प्यारे और सहज ही सम्मानित बन जाते हैं लेकिन घर के लोग उन्हें नहीं सुहाते। शास्त्री जी के साथ ऐसी बात नहीं थी।

शास्त्री जी चाहे कितने ही थके-हारे बाहर से आएँ, घर में सहज रहते और सबों से प्यार से बोलते। मीठी-मीठी बातें करते और इसी में अपनी थकान मिटा लेते थे। घरवाले अपनी प्रसन्नता के लिए उनकी बाट जोहते थे।

सुनील हों या अनिल, अशोक हों या हरी, सभी से उन्हें बराबर प्यार था; बेटियों से कुछ ज्यादा ही। अपने व्यस्त जीवन में भी वे बच्चों के बीच बैठकर बातें करने के लिए समय निकाल ही लेते थे। उनकी बातों में बड़प्पन थोपने की बजाय अपनापन रहता था। कभी-कभी अपने बीते दिनों की बातें बताते थे। इस तरह वे अपनों में ही खो जाते थे। आस-पास के बच्चे भी उनके पास आकर अपनत्व पाते थे।

बच्चों को कुछ सिखाने के उनके तरीके भी गाँधीवादी थे। झिड़कने, खीजने या गुस्सा करने की बजाय अपने पुत्रों को उन्होंने हमेशा समझाया। अगर कोई चीज यथास्थान रखी हुई नहीं देखी तो इसके बारे में कुछ नहीं कहते थे। नौकरों या बच्चों से उस चीज़ को निर्धारित जगह पर रखने को न कहकर स्वयं उसे यथास्थान रख देते थे, बच्चे देखकर झेंप जाते और भविष्य में ऐसा न हो, इसका ध्यान रखते थे। इस तरह शास्त्री जी ने अपने परिवार को खासतौर से शिक्षा दी थी कि अपव्यय रोका जाए, न फालतू बिजली जले और न पानी बहे।

देश के महत्वपूर्ण पदों पर रहते हुए भी शास्त्री जी का भोजन सादा और सामान्य था। आलू उनका प्रिय खाद्य था। कभी इसे अकेला खाते, कभी दूसरी सब्जियों के साथ। डबलरोटी के स्लाइस उन्हें बहुत पसंद थे। उन्हें हरी सब्जियों से बहुत प्रेम था। भोजन में खिचड़ी और आलू का चोखा उन्हें बहुत पसंद था।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के निवासी होने के कारण उन्हें चावल ज्यादा

पसंद था, लेकिन 1965 में पाकिस्तानी आक्रमण के साथ जब चावल के दाम बढ़ने लगे और देश में चावल की कमी हो गई तो उन्होंने उसे खाना बिलकुल छोड़ दिया। घर में चावल पकना बंद हो गया।

रात को सोने से पहले एक प्याला दूध वे जरूर पीते थे। वैसे, दिन में चाय कई बार लेते थे। इतने संयमित रहकर आत्मिक शक्ति से ही वे प्रातः 8 बजे से लेकर रात एक बजे तक निरंतर काम करते रहते थे।

स्वदेशी के पैरोकार : चरखा चलाते हुए

शास्त्री जी का बंगला भी बहुत साधारण था। उन्हें बिछे कालीन पर चलने में झिझक हुई तो उसे हटवा दिया। बंगले में कूलर इसलिए नहीं लगवाया गया ताकि बच्चे और वे उसके बिना भी रह सकें, कूलर के आदी न बनें। साधारणता का यह असाधारण और अप्रतिम उदाहरण है।

अपने मित्रों का शास्त्री जी बहुत ध्यान रखते थे। अपने गुरुओं तथा आदरणीय महानुभावों के प्रति उनके मन में सदैव सम्मान भाव

बना रहता था, लेकिन उनमें से कोई भी यह हिम्मत नहीं कर पाता था कि उनसे कोई गलत काम करा ले और परिणामतः किसी को आरोप लगाने का मौका मिले। अनुचित माँगों को वे कतई पसंद नहीं करते थे। शास्त्री जी का दबदबा ऐसा था कि कोई अनुचित माँग रखने की हिम्मत भी नहीं कर सकता था।

अपने ऊपर अनूठी फब्तियाँ कसकर शास्त्री जी अकसर लोगों को हँसा देते थे। इससे लोगों को मजा आ जाता था। उनका मनोरंजन भी प्रेरक था, शिक्षण का एक उपादान था।

विनोद के संस्मरणों में, एक बार की बात है कि नेहरू जी ने शास्त्री जी से इंग्लैंड जाने को कहा। वहाँ की वेशभूषा के अनुसार उन्होंने शास्त्री जी से पैंट या पायजामा सिलवाने को कहा। पर शास्त्री जी यह कहाँ करने वाले थे! उन्होंने एक प्रसंग सुनाकर सरसता से प्रस्ताव को खारिज कर दिया। "नकल कितनी खराब है क्या बताऊँ? आपकी नकल करने से मैं एक बार परेशानी में पड़ गया था। मैंने भी एक बार चूड़ीदार पायजामा बनवा लिया था, जिसे मैंने जैसे-तैसे पहन तो लिया लेकिन उतारते समय दूसरों की मदद लेनी पड़ी थी।"

देश हो या विदेश शास्त्री जी धोती-कुर्ता और कोट ही पहनते थे। वे अकल से काम लेते थे, नकल से नहीं। अपनी मौलिकता उनकी स्वाभाविक विशेषता थी। यही उनकी पहचान थी।

शास्त्री जी का जीवन यह प्रमाणित करता है कि सेवा करने वालों की भी कद्र होती है। उन्हें उचित सम्मान प्राप्त होता है। आदर या सम्मान के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। शास्त्री जी ने लोकप्रियता के लिए किसी की सिफारिश नहीं कराई। उनकी अपनी सज्जनता ने लोगों के दिलों में उनके लिए जगह बनाई। उनका साथ किसी के सुख को दूना और दुख को सूना करने वाला था।

नेहरू जी ने सन् 1952 में शास्त्री जी को केंद्रीय रेलमंत्री का प्रभार

सौंपा था। शास्त्री जी ने सर्वेक्षण किया तो पाया कि रेलों की आमदनी तीसरी श्रेणी में यात्रा करने वालों के कारण ज्यादा होती है। लेकिन उन्हें अन्य श्रेणियों के यात्रियों की अपेक्षा कम सुविधाएँ प्राप्त हैं। अतः उन्होंने प्रयत्न करके तीसरी श्रेणी के यात्रियों के लिए जनता एक्सप्रेस और डीलक्स गाड़ियाँ चलवाईं। इसके लिए पहले से अच्छी सीटें, प्रकाश और पंखों की सुविधाएँ दिलवाईं। लंबी दूरी की गाड़ियों में भोजन उपलब्ध कराने की व्यवस्था की। उन्होंने प्रचलित इंटर क्लास समाप्त किया। रेलों को छह जोनों में विभक्त किया।

मंत्री पद के प्रति उनको कभी कोई लोभ-लालच या आसक्ति नहीं थी। यह घटना उनके इसी स्वभाव को दर्शाती है। किसी कर्मचारी की गलती से दक्षिण अरियालूर में रेल दुर्घटना हो गई। जो मंज़िल तय करने के लिए यात्रा कर रहे थे, उनके जीवन की मंजिल आ गई। निर्दोष यात्री असमय मृत्यु को प्राप्त हुए। शास्त्री जी को बहुत दुख हुआ। किसी छोटे की गलती जिस प्रकार परिवार का बड़ा-बूढ़ा अपने ऊपर ले लेता है, आहत और उसके तीमारदारों से क्षमा याचना करता है, उसी प्रकार स्वयं की न सही लेकिन अपने विभाग के किसी कर्मचारी की गलती को अपनी गलती मानकर उन्होंने जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली, जैसे पुल उनकी बेईमानी से टूटा हो या रेल के ड्राइवर वे ही हों, और गाँधी जी के इस शिष्य ने रेल विभाग का मंत्रीपद छोड़ दिया। जब लोगों को पता चला तो बहुतों को अचरज हुआ। उनके नजदीकी लोगों ने उन्हें समझाया, कहा कि ऐसी दुर्घटना कभी-कभार हो जाती है, आगे भी होगी तो क्या दूसरे मंत्री पद त्याग करेंगे? पर शास्त्री जी नहीं माने।

अरियालूर ट्रेन दुर्घटना के लिए उन्होंने पश्चाताप और प्रायश्चित किया। उनकी अंतरात्मा की आवाज़ विचित्र थी। मंत्रिमंडल में उनकी कमी महसूस की गई। पंडित नेहरू ने कहा, "शास्त्री जी, आपने रेलमंत्री

के पद से त्यागपत्र दिया है, देश सेवा से नहीं।" और उन्होंने शास्त्री जी को बिना विभाग का मंत्री बनाकर उनको अपने साथ ही रखा।

रेल मंत्री की हैसियत से इसके अलावा भी एक और घटना उल्लेखनीय है। देहरादून की तत्कालीन सांसद श्रीमती चंद्रावती लखनपाल ने गाँववालों के सहयोग से, पेयजल व्यवस्था डाँडालखोत के गाँवों में करने के लिए एक टंकी बनवाई थी। उस टंकी में पानी पास के रेलवे पाइप से दिए जाने पर पाँच मील दूर गाँव के प्रत्येक ग्रामवासी को पानी की समस्या नहीं रहती। श्रीमती चंद्रावती लखनपाल ने दिल्ली जाकर शास्त्री जी से यह बात बहुत संकोच से कही और इसके लिए निर्धारित अधिवेशन में पधारने के लिए आग्रह किया। शास्त्री जी ने स्वीकृति दे दी। अपने व्यस्त कार्यक्रमों में शास्त्री जी इसे भूल गए होंगे ऐसा मानकर लोगों ने अधिवेशन में ढिलाई कर दी, लेकिन कुछ दिनों पूर्व श्रीमती लखनपाल को टेलीफोन पर शास्त्री जी की आवाज़ सुनाई दी। शास्त्री जी कह रहे थे कि वे आ रहे हैं।

शास्त्री जी अधिवेशन में उत्तरी क्षेत्र के जनरल मैनेजर श्री कौल को लेकर गए और उन्होंने जनता और अधिकारी को आमने-सामने कर दिया। जिस काम में सालोंसाल लिखा-पढ़ी में बीतते, वह इस प्रकार शास्त्री जी की सहायता से हाथों-हाथ हो गया।

शास्त्री जी ने भाषण में कहा, "पानी हमारी प्रमुख और प्राथमिक आवश्यकता है। जो सरकार इसका भी प्रबंध नहीं कर सकती उससे और अधिक की क्या आशा की जा सकती है!" शास्त्री जी इसी तरह लोगों का दिल जीत लेते थे।

सन् 1957 में इलाहाबाद सीट से शास्त्री जी संसद के लिए खड़े हुए तो आसानी से सफलता पा गए। उनको संचार और परिवहन का मंत्री बनाया गया। इस पद पर रहते उन्होंने मार्गों का राष्ट्रीयकरण किया।

पंत जी के देहावसान के बाद अप्रैल 1961 में शास्त्री जी को

गृहमंत्री पद दिया गया। उन्होंने प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त बनाने के लिए 'संतानम् कमेटी' नियुक्त की और उसके निर्णय लागू किए।

सन् 1962 में 20 अक्तूबर को चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। उत्तरी-पूर्वी सीमा से चीन के घुसपैठिए सारे देश में फैल गए। हिंदी-चीनी भाई-भाई का नारा और पंचशील समझौते की असलियत प्रत्यक्ष दिखने लगी। हमारे विश्वास को बहुत बड़ा प्रहार सहना पड़ा। ऐसे विकट समय में शास्त्री जी ने जनता के मनोबल को ऊँचा बनाए रखा।

ऐसे अवसर पर शास्त्री जी को अपने अन्य पड़ोसी देशों के साथ भी रिश्ते को सामान्य, सुसंगत और देश के हित में बनाए रखने की महती जिम्मेवारी भी सँभालनी पड़ी। नेपाल से चीन के संबंध अच्छे बन जाने के कारण भारत को नुकसान हो सकता था। ऐसी स्थिति में भारत की नेपाल से मित्रता बनी रहे, इसकी आवश्यकता थी। सांस्कृतिक समानता को आधार बनाकर शास्त्री जी ने नेपाल की यात्रा की और नेपाल-भारत मैत्री के लिए प्रयास किए, जिसमें अच्छी सफलता मिली। शास्त्री जी ने व्यापारिक संबंधों को दृढ़ता भी दी, जिसका लाभ दोनों देशों को मिला।

हमारे देश में प्रशासकीय पकड़ भी ढीली पड़ गई थी। शासन में पद-प्रतिष्ठा के लिए नेहरू मंत्रिमंडल में आंतरिक संघर्ष चलने लगा था। काँग्रेस पार्टी की शक्ति छीज रही थी और छवि क्षीणता की ओर उन्मुख थी। काँग्रेस पार्टी के तत्कालीन अध्यक्ष कामराज ने वयोवृद्ध जनों को पद त्याग करने का आग्रह किया। यह कामराज योजना का मुख्य मुद्दा था। इसके द्वारा पार्टी को मजबूत बनाने का प्रयोजन था। नए लोगों को पदस्थ करने का इसने अवसर दिया।

शास्त्री जी ने अपने विवेक से अपने पद से त्याग पत्र देकर सत्ता से न चिपके रहने का प्रमाण दिया और लगन से पार्टी का काम

किया। नेहरू जी सन् 1964 के भुवनेश्वर काँग्रेस अधिवेशन के बाद अस्वस्थ रहने लगे। उनके डॉक्टरों ने उनकी स्वास्थ्य रक्षा के लिए काम अधिक न करने की सलाह दी थी। इन परिस्थितियों में नेहरू जी ने अपने अत्यंत निकट, पूर्ण विश्वसनीय शास्त्री जी को अपना सहायक बनाया और उनकी नियुक्ति की घोषणा निर्विभागीय मंत्री के रूप में की।

शास्त्री जी हर्ष और विषाद से रहित थे। उन्होंने पुनः सत्ता सँभाली। इसका लाभ सभी को मिला।

नेहरू जी के बाद कौन का प्रश्न उठा। दो नाम उभरकर उछले, लाल बहादुर शास्त्री और श्रीमती इंदिरा गाँधी। शास्त्री जी ने प्रधानमंत्री बनने के लिए कोई प्रयास नहीं किया।

निर्विभागीय मंत्रित्वकाल में शास्त्री जी ने हजरत बल कांड का समाधान अत्यंत कौशल से निकाला। श्रीनगर की मस्जिद से हजरत मोहम्मद साहब के पवित्र बाल गायब हो जाने के प्रकरण को लेकर पाकिस्तान ने इसे षड्यंत्र कहना शुरू कर दिया और हिंदुओं के अपराधी होने का अभियोग लगाया।

पाकिस्तान के समर्थक मुसलमानों ने भारत में धर्म के नाम पर जेहाद की माँग की और सारे देश में कई स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे होने लगे। नेहरू जी ने शास्त्री जी को इस समस्या को सुलझाने के लिए भेजा। उन्होंने अपराधियों का पता लगाने का प्रयत्न किया। उन्हें कामयाबी भी मिली। पाकिस्तान और उसके पक्षधरों-समर्थकों की चाल नहीं चल पाई। सारे देश में शांति और व्यवस्था स्थापित हो गई। सांप्रदायिक आग बुझाने की इस घटना ने शास्त्री जी का महत्व और बढ़ा दिया।

27 मई, 1964 को पंडित जवाहरलाल नेहरू का निधन हो गया। इस देश के इतिहास में नेहरू जी के कल्पना और स्वप्न को साकार

और उन्हें पूरा करने के लिए शास्त्री जी के प्रयत्न भुलाए नहीं जा सकते।

श्रीयुत कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने 'नेहरू, इंदिरा और शास्त्री' शीर्षक लेख (नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली) में लिखा है, 'शास्त्री जी रात को नौ बजे इंदिरा गाँधी के पास गए और उन्होंने एकता के लिए उनसे प्रधानमंत्री बनने के लिए निवेदन किया और कहा कि "आपके नाम पर एकता हो जाएगी।" इंदिरा जी का उदात्त उत्तर था, "पंडित जी अपने अंतिम दिनों में आपके लिए पूरी तरह मन बना चुके थे और उसके लिए आपको तैयार कर रहे थे। मैं उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकती।"

शास्त्री जी लौट आए पर उन्हें चैन नहीं पड़ी। लगभग 11 बजे उन्होंने श्री कामराज को इंदिरा जी के पास भेजा। पर इंदिरा जी का उत्तर था, "अभी पंडित जी की चिता भी ठंडी नहीं हुई और मैं उनकी इच्छा के विरुद्ध जाऊँ?"

2 जून, 1964 को प्रातः 9 बजे संसद भवन के सेंट्रल हॉल में काँग्रेस संसदीय दल की बैठक काँग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष श्री कामराज की अध्यक्षता में हो रही थी। पं. जवाहरलाल नेहरू के बाद अन्य व्यक्ति का चुनाव किया जाना था, जिसे प्रधानमंत्री नियुक्त किया जा सके। सामने कैबिनेट मिनिस्टर बैठे थे। सभी कुर्सियाँ भरी देख शास्त्री जी सीढ़ियों के पास बैठ गए और कुछ देर बैठे रहे। बाद में उन लोगों ने देख लिया और उनको कुर्सी पर बिठाया गया। इसके बाद तो उन्हें प्रधानमंत्री की ही कुर्सी दी गई।

किसी रेखा के समांतर बड़ी रेखा खींचना परिश्रम और अध्यवसाय का परिणाम है। शास्त्री जी ने अपने चरित्रबल से महानता प्राप्त की थी। प्रधानमंत्री का पद पाना भी ऐसा ही अवसर था। उनके प्रधानमंत्री बनाए जाने पर लोकतंत्र की ही जीत हुई।

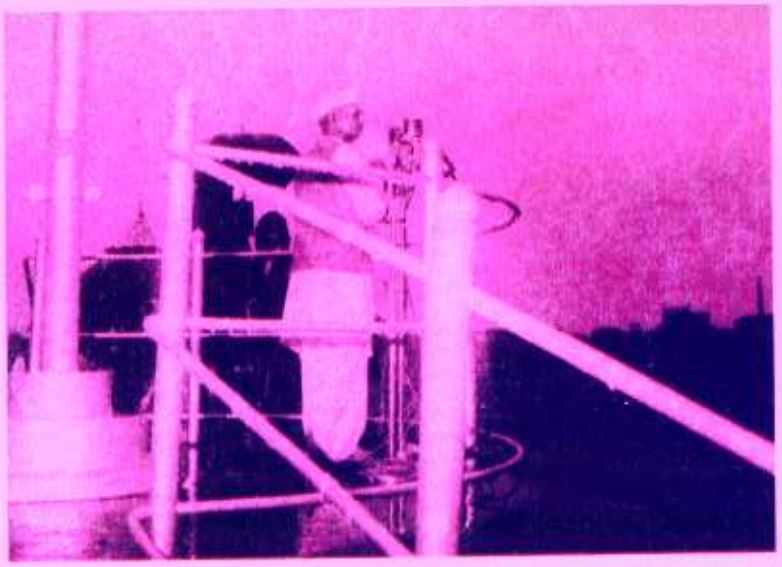

लालकिले के प्राचीर से भारत के 'लाल' लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्र को संबोधित करते हुए

शास्त्री जी की यह बड़ी उपलब्धि भी उन्हें साधारण और सामान्य व्यक्ति ही बनाए रही। वे फूले-फले बिरवे की तरह झुक गए और अधिक विनम्रता और शालीनतापूर्वक सबसे व्यवहार करने लगे। उन्होंने ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे बड़प्पन की बू आए।

उनकी माता जी ने नए प्रधानमंत्री बने अपने पुत्र को उसके चरण स्पर्श करने के बाद आशीर्वाद देते हुए कहा, "बेटा, देश की हिफाजत पूरी तरह से होनी चाहिए। गरीबों को आराम मिलना चाहिए। दुखी लोगों को सुख मिलना चाहिए।"

शास्त्री जी ने प्रधानमंत्री काल में भी हमेशा अपनी माँ की आज्ञा का पालन किया। तभी वे भारत माता की सेवा कर पाए।

प्रधानमंत्री की हैसियत से उन्होंने अपनी पहली यात्रा सेवाग्राम की की थी। बापू की स्मृति में शास्त्री जी भाव विभोर हो गए। शास्त्री जी ने अपने मित्रों को बताया कि बापू उन्हें बहुत चाहते थे। सन् 1933

में बापू एक स्टेशन पर रेल में गए लेकिन बहुत भीड़ के कारण शास्त्री जी रेल में चढ़ न सके। बापू का मौन व्रत था। न बोलने की स्थिति में बापू रेल से उतर गए। भीड़ ने रास्ता दिया, उन्होंने शास्त्री जी को रेल में चढ़ाया, तब वे अंदर गए।

शास्त्री जी गांधी जी के पक्के अनुयायी थे। उनमें गजब की सहनशीलता थी। स्वयं निर्दोष होने पर भी दूसरों के कारण अपने को दोषी जैसा बताने के लिए वे शांत रहते थे। परनिंदा अथवा किसी को बदनाम करने में उनकी कोई रुचि नहीं होती थी। ऐसे अवसर भी आए

आकाशवाणी पर राष्ट्र को संबोधन

जब उन्होंने दूसरों की गलतियाँ निस्पृह भाव से अपने ऊपर ओढ़ लीं।

उनकी मृत्यु से एक-दो महीने पहले की घटना है कि संसद में प्रधानमंत्री भवन, 10 जनपथ में बिजली और पानी की ज्यादा खपत पर चर्चा हुई। विरोधियों ने इतने परोपकारी प्रधानमंत्री पर भी आरोप लगा दिया। ऐसे व्यक्ति पर, जिसने गर्मियों में भी कूलर नहीं लगने दिया, यह दलील देकर कि बच्चे कूलर के आदी हो जाएंगे। विरोधियों ने महज विरोध के लिए यहाँ तक कह दिया कि 'प्रधानमंत्री के बंगले में सबसे ज्यादा पानी और बिजली का खर्च होता है जिसका भुगतान सरकार को करना पड़ता है।'

शास्त्री जी ने जब यह खर्च अपने पास से देना स्वीकार किया तो भी विरोधियों को संतोष नहीं हुआ। विरोधियों को यह आशंका हुई कि वे फिजूलखर्ची का कारण बताने से कतरा रहे हैं।

शास्त्री जी ने इस भ्रांति को दूर करने के लिए एक सभा में कहा, "मेरे यहाँ आने-जाने वालों का ताँता लगा रहता है। कोठी में स्थान कम है इसलिए बाहर तंबू लगवाना पड़ा और प्रकाश की व्यवस्था करवानी पड़ी। साथ ही हमारे कर्मचारी भी बिजली खूब जलाते हैं। एक दिन मेरा एक कर्मचारी मेरे पास आया और कहने लगा कि 'सर्दी बहुत पड़ती है, यदि आप कहें तो हीटर जला लिया करूँ।' मैंने हाँ कह दिया, बाद में पता चला कि वे भोजन भी हीटर पर ही बनाते हैं। अब उन्हें मना कैसे करता?"

इस प्रकार की साधारण घटनाएँ भी शास्त्री जी के महत्वपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय देती हैं। उनका हृदय गंगा जैसा पवित्र, यमुना जैसा निर्मल और सागर जैसा गंभीर था। दूसरे का दुख दूर करने में वे हिचकते नहीं थे। स्वयं ही अपमान का हलाहल पीने में यदि दूसरों का हित देखते तो वे झिझकते नहीं थे।

गुफ्तगू : पं. नेहरू के साथ

जाकिर हुसैन, राधाकृष्णन एवं शास्त्री

गुफ्तगू : डॉ. राजेंद्र प्रसाद के साथ

विचारमग्न शास्त्री, साथ में कामराज

4. संध्या

सन् 1965, पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया। शास्त्री जी ने अपनी माँ की शिक्षा मानी। देश की हिफाजत उनकी जिम्मेदारी थी। उन्होंने प्रतिरक्षा तैयारी में पूरा ध्यान दिया और सावधान रहे। बढ़ते हुए खर्चों को घटाने में स्वयं पहल की। तब उन्होंने जनता से आग्रह किया, सहयोग माँगा।

देश की रक्षा के लिए मुद्रा एवं स्वर्ण के रूप में धन चाहिए। केवल वक्तव्य देने से देश की रक्षा नहीं होगी। इसके लिए देशवासियों को माया-मोह त्यागकर तन-मन-धन से सहयोग करना होगा। कथनी-करनी का पलड़ा बराबर होगा तभी जनमानस में विश्वास जागृत होगा। इसलिए शास्त्री जी ने अपने परिवार के खर्चों में कटौती का आदेश दिया तथा रक्षा कोष में अपनी पत्नी से बचे हुए स्वर्ण आभूषणों को देने के लिए कहा, जिसे सहर्ष स्वीकार कर उनकी त्यागमयी पत्नी ने हँसते-हँसते अपने प्रिय आभूषणों को रक्षाकोष में दान कर दिया। इस कृत्य का व्यापक असर पड़ा। देखते-ही-देखते रक्षाकोष में करोड़ों-करोड़ रुपया जमा हो गए और सोने का विपुल भंडार बन गया।

यह सच है अनुकरण के जल का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर जाता है। जब यह बात सैनिकों और अधिकारियों को मालूम हुई तो उन्होंने भी अपने खर्चे घटा दिए। उनके उत्साह में अपूर्व वृद्धि हुई। रक्षा उत्पादन के आयुध उन्नत किस्म के बनने लगे। देश रक्षा का

कार्य प्रत्येक का दायित्व बन गया। एक-दूसरे पर टालने की प्रवृत्ति और अपना लाभ लेने की प्रवृत्ति में लगाम लग गई। सैनिक सावधान और सतर्क रहने लगे कि उनके कारण कुछ ऐसा न हो जिसका परिणाम देश भोगे और एक क्षण की गलती की सज़ा सदियों तक सभी को भोगनी पड़े और चर्चा का विषय बने।

भारत-पाक युद्ध के समय देश में अन्न की कमी होने की परिस्थिति सामने आ गई और स्थिति और विकराल होने लगी जब अमेरिका ने गेहूँ की आपूर्ति रोक देने की धमकी दी। ऐसे में स्वाभिमानी प्रधानमंत्री ने एक ओर उत्पादन बढ़ाने पर जोर दिया, दूसरी ओर खपत घटाने के लिए उन्होंने सोमवार को व्रत रखने का आह्वान किया। उसका प्रभाव पड़ा। यथा राजा तथा प्रजा। बहुत-से लोगों ने सोमवार को व्रत रखना शुरू कर दिया। व्रत ने कृषि वैज्ञानिकों को झकझोरा। परिणाम अनुकूल हुआ। वे दोनों मोर्चों पर सफल रहे। शास्त्री जी ने 'जय जवान-जय किसान' का नारा दिया।

भारत की विदेश नीति के बारे में शास्त्री जी ने स्पष्ट घोषणा की कि वे पंडित जी की नीतियों को जारी रखेंगे और कोई परिवर्तन नहीं चाहेंगे। सहअस्तित्व और गुटनिरपेक्ष तटस्थ नीति अपनाएँगे। न तो रूस के दल में रहेंगे और न अमेरिका के दल में। 'जियो और जीने दो' और 'न डरो न डराओ' के सिद्धांतों का पालन करेंगे। अपनी इसी नीति के अंतर्गत उन्होंने रूस और अमेरिका दोनों से ही अपने संबंध बनाए रखे। शास्त्री जी ने कनाडा, बर्मा, रूस और श्रीलंका की यात्राएँ कीं और इन देशों की सद्भावना प्राप्त की। इन देशों से सामाजिक और आर्थिक संबंध भी दृढ़तर किए।

5 अगस्त, 1965 को पाकिस्तान ने कश्मीर पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया। पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति अयूब खान और विदेशमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो सहज ही सारे भारत को हड़प जाने

का स्वप्न देख रहे थे। उन्होंने सोचा था कि हिंदुस्तान के मुसलमान धर्म के नाम पर उनका साथ देंगे। उनके मुजाहिदों ने हमारे देश में पूरे प्रयत्न किए लेकिन हमारे देश की धर्मनिरपेक्ष नीति और उसके पालन के कारण परिणाम हमारे हित में रहे।

चीन के साथ साँठ-गाँठ करके पाकिस्तानी गोरिल्ला छापामारों ने रण के कच्छ और कश्मीर में सीमा विवाद के नाम पर घुसपैठिए बनकर उपद्रव किया। दूसरी ओर, अमेरिका से मिले हथियारों से लैस होकर पाकिस्तानी सेनाओं ने हमला कर दिया। तभी चीन ने भी पाकिस्तानियों का साथ दिया। पूरे उत्तर-पूर्वी सीमा क्षेत्र पर उनकी सेनाएँ तैनात थीं।

ऐसे दोहरे संकट में भी शास्त्री जी ने वीरता का परिचय देकर देश के सैनिकों का जोश बढ़ाया और पूरे भारत के मनोबल का सही प्रतिनिधित्व किया। उनकी ललकार पर हमारे जवान आगे बढ़े। देश में नौजवानों ने आंतरिक मोर्चे सँभाले।

राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में मुक्त दान देकर लोगों ने राष्ट्र की सेवा में तन-मन-धन अर्पण कर दिया। तब चीन ने आक्रमण का अल्टीमेटम वापस ले लिया। हमारी सेनाओं ने वीरता की परंपरा को कायम रखते हुए पाकिस्तानियों को न केवल धूल चटा दी, बल्कि पाकिस्तानी आक्रामकों को लाहौर के पार खदेड़ दिया।

सारे संसार ने इस चमत्कार को देखा और सराहा। समझौते की माँग रखी गई और संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार 9 सूत्री समझौता तैयार किया गया। इस समझौते पर रूस में दस्तखत होने थे। पाकिस्तान और हिंदुस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री ताशकंद गए। रूस के तत्कालीन प्रधानमंत्री कोसिजिन ने समझौता कराने की जिम्मेदारी ली थी। 3 जनवरी, 1966 को शास्त्री जी प्रातः दस बजे ताशकंद रवाना हो गए। इनके साथ अन्य सदस्यों में श्री यशवंतराव चह्वाण मुख्य थे।

'खुश रहो अहले वतन
हम तो सफर करते हैं।'

तूफानी दुनिया से जूझने वाला छोटे कद का यह जांबाज हमारी खुशहाली के लिए 'परेशान होने' के लिए निकल पड़ा। तूफ़ान में टिमटिमाते दिए की कहानी चरम पर जा पहुँची। धोती और बंद गले के कोट में शास्त्री जी उस ठंडे प्रदेश में जाने के लिए तैयार थे।

10 जनवरी, 1966 को शास्त्री जी ने सम्मान और शांति रक्षा के लिए राष्ट्र से संसार के नागरिक होने का कर्तव्य निभाया और समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए। तब राजनीतिक विद्वान मीनू मसानी

ताशकंद में संबोधन, 1965

ने कहा था, "ताशकंद में उन्होंने जो कुछ किया वह उनकी सबसे बड़ी सफलता थी।"

हस्ताक्षर करने के बाद अयूब ने कहा, "खुदा हाफ़िज़!" इस प्रकार शांति और युद्ध के नेता ने अंतिम राजनीतिक विजय प्राप्त की।

आधी रात के कुछ पहले शास्त्री जी ने अपनी पत्नी ललिता जी को ट्रंक कॉल किया। अपने ज्येष्ठ पुत्र हरीकृष्ण से बातें कीं। घर के हाल-चाल पूछे और कहा, "मैं ठीक हूँ। काबुल होते हुए बुधवार को घर पहुँच रहा हूँ। दिल्ली के समाचार पत्र मुझे काबुल भेज दिए जाएँ।"

रात्रि को 11 बजे शास्त्री जी ने तत्कालीन स्वराष्ट्र मंत्री गुलजारी लाल नंदा को टेलीफोन किया था। दोनों की बातें बड़ी दिलचस्प थीं। नंदा जी ने कहा था, "आप केवल युद्ध के नेता ही नहीं, अब शांति के नेता भी सिद्ध हो गए।"

शास्त्री जी ने विनोदपूर्वक नंदा जी से कहा, "आप मुझे काबुल में एक दिन ज्यादा रुकने की इजाज़त दे दीजिए।"

11 जनवरी को ताशकंद के समय के अनुसार प्रातः 1 बजकर 32 मिनट पर उनका स्वर्गवास हो गया। उस समय भारत में 1 बजकर दो मिनट हुए थे। यह एकदम अप्रत्याशित था।

आशंका के विपरीत यकायक श्रीमती ललिता शास्त्री को उसी रात दुबारा उठकर फोन पर आना पड़ा। उन्हें बताया गया कि शास्त्री जी पूर्णतः स्वस्थ दशा में 11 बजे सोए थे। इससे पहले उन्होंने अपने नौकर से कहा था, "कल तड़के ही बिस्तर बाँध लेना।" फिर सो गए। फिर लगभग 1 बजे उन्हें खाँसी आई। उन्होंने अपने निजी चिकित्सक डॉ. चुग, जो भारत के विलिंग्टन अस्पताल में दिल्ली से गए थे, को जगाया। डॉक्टर ने जागकर उनको देखा और इंजेक्शन दिया। धीरे-धीरे वे बेहोश हो गए। वाणी अवरुद्ध होने से पहले उनके अंतिम शब्द थे, "हाय माँ, हाय राम!"

महाप्रयाण : अंतिम यात्रा

रूसी और भारतीय चिकित्सकों के संयुक्त प्रयत्नों से भी उन्हें पुनः सचेत नहीं किया जा सका और उनका निधन हृदयगति अवरुद्ध हो जाने से हो गया है, यह घोषित कर दिया गया।

भारत में किसी को इस समाचार पर विश्वास नहीं हुआ। श्रीमती ललिता शास्त्री इस समाचार को सुनकर अचेत हो गईं। शास्त्री जी के 97 वर्षीय चाचा हर प्रसाद जी वहीं बैठे थे, उनके आँसू अविरल बह रहे थे। उनकी वृद्धा माता रामदुलारी 85 वर्ष की थीं। उनको विश्वास ही नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "नहीं, मेरे पुत्र का देहांत कैसे हो सकता है? वह जीवित है!"

सोवियत संघ के प्रधानमंत्री कोसिजिन ने कहा, "सभी रूसी उस भारतीय के शव के समक्ष अपना सिर झुकाते हैं जिसने पृथ्वी पर स्थायी शांति, मैत्री के लिए इतना कुछ किया। शास्त्री जी हमारे समय के महान व्यक्ति थे। वे अंतिम दिन तक भारतीय जनता के कल्याण और शांति के लिए प्रयत्नशील रहे। शास्त्री जी ने भारत-पाक मैत्री की

आधारशिला रख दी।"

शास्त्री जी की शवयात्रा का विमान जब पाकिस्तान की सीमा से उड़ता हुआ चला जा रहा था तो लोग ताशकंद समझौते के उस नेता का महत्व और भी मान गए। जनवरी की ठंड लेकिन सूर्य की तपन से भी ज्यादा दग्धकारी था यह महाभिनिष्क्रमण।

काबुल में खान अब्दुल गफ्फार खान (सीमांत गाँधी) ने दोनों देशों के बीच शांति की बड़ी प्रतीक्षा की थी। खान साहब फूट-फूटकर रोए और भारतीय दूतावास जाकर अधिकारी को एक गुलदस्ता दिया। कैसा संयोग था! शास्त्री जी काबुल रुकना चाहते थे और सीमांत गाँधी उन्हें गुलदस्ता भेंट करना चाहते थे, जिसे अंततः उनके शव पर चढ़ाया गया।

11 जनवरी, 1966, शास्त्री जी का शव पालम हवाई अड्डे पर दिन के अढ़ाई बजे उतारा गया।

तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने शोक विह्वल होकर कहा, "लाल बहादुर एक दृढ़प्रतिज्ञ राष्ट्रवादी थे और ताशकंद में भारत-पाकिस्तान विवाद समाप्त करने के प्रयत्न में उन्होंने अपना जीवन दे दिया। पूरा देश उनका ऋणी है और शोक संतप्त है। उन्होंने हमारे देश के अत्यंत कठिन समय में लगभग 18 महीने तक प्रधानमंत्री पद पर रहकर देश की सेवा की। शास्त्री जी जनता के आदमी थे और यह बात कभी भुलाई नहीं जा सकेगी कि उन्होंने अंतिम क्षणों तक काम करके साँस छोड़ी।"

12 जनवरी, 1966, नौ बजे सुबह से ही एक बड़ी भीड़ उनके निवास स्थान और हवाई अड्डे पर जमा थी। दिल्ली के नागरिक सड़कों पर जमा थे। सभी बाजार बंद थे। दूर-दूर के लोग जल्दी आने की उतावली में थे।

डॉ. जाकिर हुसैन ने अपनी श्रद्धा व्यक्त की, "मेरे प्रिय मित्र

हम तुम्हारे साथ हैं : शास्त्री जी के पीछे-पीछे लोगों का हुजूम

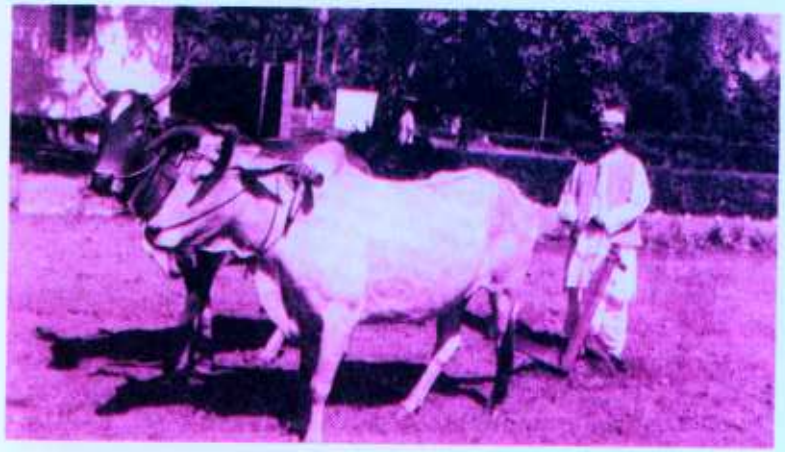

जय जवान जय किसान : प्रधानमंत्री आवास में हल-बैल के साथ

(शास्त्री जी) ने शांति की बलिवेदी पर अपने आप को न्योछावर कर दिया। शोक में डूबा सारा राष्ट्र न केवल उन्हें सम्मान देता था अपितु उनसे प्यार करता था। वह जनता के आदमी थे और उन्हें उस व्यक्ति के रूप में हमेशा याद किया जाएगा जो उनकी सेवा में अपने जीवन के अंत तक परिश्रम करता रहा। विश्व शांति के निर्माताओं में उनका नाम हमेशा रोशन रहेगा।"

सभी के हृदय शोकाभिभूत थे। आँखें छलछला उठी थीं। सबसे पहले सरदार स्वर्णसिंह जी दुखी सुमंत की भाँति विमान से उतरे। फिर रक्षामंत्री श्री यशवंतराव चह्वाण उतरे, बाद में अन्य लोग आए। श्री हरीकृष्ण को दिवंगत विजयी योद्धा का दर्शन कराया गया तो वे फूट-फूटकर रो पड़े।

लार्ड टेनीसन की एक कविता का शीर्षक है, 'होम द ब्रॉट देयर वारियर डेड।' शास्त्री जी की विजय यात्रा की शहादत भी उसी तरह की थी। तकियों के सहारे स्ट्रेचर पर ले. जनरल कैन्डेथ, वाइस एडमिरल ए.के. चटर्जी, रियर एडमिरल एस.एन. कोहली, वाइस एयर मार्शल राजा राम इत्यादि महानुभावों ने शास्त्री जी के शव को उतारा। उनका शरीर राष्ट्र ध्वज से ढक दिया गया। तीनों सेनाओं के अध्यक्षों ने उन्हें तोपगाड़ी पर पहुँचाया और यह शोकपूर्ण शवयात्रा लगभग 20 कि.मी. रास्ते को पार करके 10 जनपथ पर आकर पूरी हुई।

संसार के प्रमुख राजनयिक एवं प्रधान दिल्ली आ गए थे। अंतिम दर्शन में माला अर्पित करने वालों की भीड़ विशाल थी।

महारानी एलिजाबेथ ने शोक संदेश भेजा, "मुझे आपके प्रधानमंत्री की मृत्यु का समाचार पाकर अत्यंत दुख हुआ। राष्ट्रमंडल की मुखिया होने के नाते, मैं भारतीय जनता, सरकार व शास्त्री जी के परिवार के प्रति संवेदना व्यक्त करती हूँ। मेरे पति भी इस घटना से अत्यंत दुखी हैं।"

12 जनवरी, 1966, प्रातः दस बजे से एक शहीद की विजययात्रा विजय घाट के लिए आरंभ हुई। यह शांतिवन से आगे है। दोनों दोस्तों की तरह आस-पास। नेहरू के समाधिस्थल के सन्निकट। राजकीय सम्मान से उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री हरीकृष्ण ने मुखाग्नि दी।

लोगों की आँखें छलछला आईं। कुछ लोग दहाड़ें मारकर रो रहे थे। कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जो इस दृश्य को देख न सके, हृदय गति रुक जाने से वे भी चल बसे।

भारत में अमेरिकी राजदूत चेस्टर बोल्स ने अपनी श्रद्धांजलि में कहा, "लाल बहादुर शास्त्री के देहावसान से व्यक्तिगत रूप से मेरे हृदय को गहरा आघात पहुँचा है। उनकी मृत्यु से न केवल भारत के लोगों की बल्कि विश्व भर के लोगों की भारी क्षति हुई है।"

दिल्ली के रामलीला मैदान में देश और विदेशों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में श्रद्धांजलि सभा संपन्न हुई, जिसमें शास्त्री जी के कृतित्व को सराहा गया। 30 अप्रैल, 1966 को देश के राष्ट्रपति ने उनको मरणोपरांत 'भारत रत्न' सम्मान प्रदान किया। वैसे, सच कहा जाए तो वे 'विश्व रत्न' थे।